Chapter-6

6

==

:: षष्ठ अध्याय ::

:: दलित-जीवन की समस्याएँ (2) ::

==

A Dhaval PRODUCT A'BAD

: षष्ठ अध्याय :

"दलित जीवन की समस्याएं : (2) "

प्रास्ताविक :

मानवता का रास्ता संघर्ष का रास्ता है । यहां कदम-कदम पर मनुष्य को नाना प्रकार की समस्याओं से जूझना पड़ता है । जो साधन - सम्पन्न हैं, जो ऊंचे वर्ग और वर्ण के लोग हैं, उनके जीवन में भी अनेकानेक समस्याएं आती हैं, तो फिर जो निम्न दलित वर्ग के लोग हैं, उनके जीवन में

तो उनसे भी कई गुना अधिक समस्याएं आ सकती हैं। पंचम् अध्याय में हमने दलित जीवन से सम्बद्ध सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक प्रभृति समस्याओं का आंकलन किया था, प्रस्तुत अध्याय में इस वर्ग की अन्य समस्याओं — जैसे धार्मिक समस्याएं, नैतिक समस्याएं, संस्कारगत समस्याएं, शैक्षिक समस्याएं, मनोवैज्ञानिक समस्याएं - आदि को व्याख्यायित करने का उपक्रम रखा है। उक्त समस्याओं के साथ-साथ उनकी आकांक्षाओं और कमजोरियों को भी उद्घाटित करने का यत्न रहा है।

§1§ धार्मिक समस्याएं :---

"धार्मिक समस्याएं" यह शीर्षक थोड़ा अनुपयुक्त, असंगत, आश्चर्यजनक तथा विडंबनापूर्ण लग सकता है। धर्म का तो मूल उद्देश्य ही मानवीय समस्याओं का निराकरण है, फिर भला धर्म मनुष्य की समस्याओं का उद्भावक कैसे हो सकता है। यहां गौरतलब बात यह है कि "धर्म" को यदि उसके सही मानवतावादी परिप्रेक्ष्य में देखा जाय, तो वह मानव समस्याओं के निवारण का एक प्रमुख साधन हो सकता है। परन्तु प्रायः देखा गया है कि धर्म संकीर्ण, साम्प्रदायिक और कभी कभी तो अधार्मिक अभिगम को धारण करने वाला दृष्टिगोचर होता है। ऐसी स्थिति में वह मानवीय संकट एवं समस्याओं में अभिवृद्धि ही करता है। धर्म जब बाह्याचारों एवं बाह्य अनुष्ठानों में कैद होकर रह जाता है, तो वह सड़ने लगता है और उसकी यह सडांध मानव समाज में भी सड़ांध पैदा करने लगती है। धर्म का सर्वाधिक विकृत एवं बीहड़ स्वरूप तब सामने आता है, जब वह पूंजीवादी प्रभुवर्ग के साथ सांठ-गांठ करके चलता है। धन, सत्ता और अभिजात वर्ग के साथ का उसका गठबंधन धर्म को लक्ष्यच्युत कर देता है। धर्म के इस विकृत संकीर्ण अनुदार, धर्मांध, अमानवतावादी, अभिगम के कारण ही सुधारवादियों द्वारा उसकी अत्याधिक आलोचना हुई है। धर्म के सही और मूल स्वरूप से किसी को भी एतराज नहीं हो सकता। धर्म के सही स्वरूप को जानने के

लिए धर्म-विषयक कतिपय परिभाषाओं पर विचार करना यथेष्ट समझा जाएगा ।

§1§ "श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्मताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि श्रुत्वा परेषां न समाचरेत् ।।" [1]

उपर्युक्त श्लोक में धर्म के वास्तविक रहस्य को उद्घाटित करते हुए यह कहा गया है कि जिसे तुम अपने लिए नुकसानदेह और दुखदायी समझते हो वह दूसरों के साथ भी मत करो । धर्म विषयक यह परिभाषा महाभारत में उपलब्ध होती है ।

§2§ "इज्याध्ययनदानादि तपः सत्य क्षमा दमः ।
आलोम इति मार्गोदयं धर्मस्याष्ट विध विध स्मृतः ।।" [2]

यह श्लोक भी महाभारत में उपलब्ध होता है । इसमें यज्ञ अध्ययन, दान, तप, क्षमा, मन , इन्द्रियों का निग्रह तथा लोभ-त्याग इन आठ प्रवृत्तियों को धर्म के आठ मार्ग के रूप में घोषित किया गया है । इनमें "यज्ञ" तथा "तप" को आधुनिक संदर्भ में भी व्याख्यायित कर सकते हैं । किसी अच्छे हेतु के लिए किया गया प्रयत्न ही यज्ञ है । ऐसे सत्कर्म के लिए जो कष्ट उठाया जाता है उसे ही हम आधुनिक संदर्भों में "तप" कह सकते हैं । महात्मा गांधी तथा विनोबा भावे ने श्रमयज्ञ के महिमा की बात की है ।

§3§ धर्म्मो यो बाधते धर्म न स धर्म्मः कुधर्म्मतत् ।
धर्माविरोधी यो धर्म्मः स धर्म्मः सत्यविक्रमः ।।" [3]

इसमें धर्म के मूल रहस्य की ओर इंगित करते हुए यह दिशा-निर्देश मिलता है कि यदि कोई धर्म किसी दूसरे धर्म को बाधा पहुंचाता है तो उसे धर्म नहीं प्रत्युत कुधर्म कहना चाहिए । जो धर्म का अविरोधी है, सत्य पराक्रमशील है, धर्म वही है ।

§4§ "अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम् ।
धर्मायपरहिताय अधर्मपरपीडनाय ।।" [4]

महाभारतकार व्यास ने अठारह पुराणों का निचोड़ देते

हुए कहा कि दूसरे का हित करना ही धर्म है । दूसरे को पीड़ा देना ही अधर्म है । महाभारतकार व्यास की इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास लोकभाषा में इस प्रकार अभिव्यंजित करते हैं --

"परहित सरिस धरम नहिं भाई ।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई ।।" [5]

§5§ "धर्म केवल लोगों की सेवा में है । तसबीर या मुसल्ला में नहीं है ।" "[6] यह कथन मुस्लिम तत्त्वचिंतक शेख सादी का है । वे भी धर्म के बाह्य अनुष्ठानों के स्थान पर सेवा धर्म की ही बात करते हैं । हमारे यहां भी कहा गया है --" सेवा धर्म परम गहनो योगिनाम, अपि अगम्य ।"

§6§ गंभीरता, उदारता, विश्वस्तता, तत्परता तथा दयालुता का व्यवहार ही सच्चा धर्म है ।" [7] यह कथन चीनी तत्त्वचिंतक कन्फूशियस का है ।

§7§ "मन को निर्मल रखना ही धर्म है, बाकी सब कोरे आडम्बर हैं ।" [8] यह कथन दक्षिण के प्रसिद्ध संत कवि संत तिरूवल्लुवर का है । वे भी बाह्य ढोंग-ढकोसलों की अपेक्षा मन की निर्मलता और पवित्रता पर जोर देते हैं ।

§8§ "He who has faith has all, and he who lacks faith lacks all, it is faith in the name of lord that works wonders, for faith is life and doubt is death." [9]

यह कथन श्री रामकृष्ण परमहंस का है । इसमें कहा गया है जिसे ईश्वर में विश्वास है, उसके पास सबकुछ है; पर जिसे ईश्वर में विश्वास नहीं वह सबकुछ खोता है । ईश्वर में विश्वास करके ही लोगों ने आश्चर्य-

चकित कर देने वाले कार्य सम्पन्न किये हैं, क्योंकि विश्वास ही जीवन है और शंका मृत्यु है । गुजराती के कवि दयाराम ने भी कहा है—" निश्चय - ना महेल मां वसे मारो वालमों" — अर्थात, मेरा प्रियतम, मेरा ईश्वर तो निश्चय के महल में निवास करता है ।

(9) " The only God to worship is the human soul in the human-body. Ofcouse, all animals or temples too, but man is the highest, the Taj Mahal of temples. If I can not worship in that, no other temple will be of any advantage." 10

" [illegible]

यह कथन स्वामी विवेकानन्द का है । इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य के शरीर में जो अन्तरात्मा है, वही ईश्वर है । यद्यपि सभी प्राणी ईश्वर के मंदिर हैं, तथापि मनुष्य इन सबमें सर्वोत्तम-मंदिरों, [illegible] का ताजमहल है । यदि मैं उसकी पूजा न कर सका तो दूसरा कोई भी मंदिर मेरे लिए उपयोगी नहीं है ।

ऐसे तो अनेक सूत्र ह और सूक्तियां उपलब्ध होती हैं, जिनमें वास्तविक धर्म के अभिलक्षणों को निर्देशित किया गया है । यदि इन सूत्रों में धर्म के मूल स्वरूप को ढूंढा जाए तो उसमें किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती । परन्तु जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है धर्म को संकुचित, विकृत, बाह्याचार या बाह्याडंबरयुक्त बना दियाभा गया है और उसके कारण ही अनेकानेक समस्याएं पैदा हुई हैं । वस्तुतः धर्म के नाम पर जितना खून बहा है उतना शायद किसी के नाम पर नहीं बहा होगा । यहां हिन्दी के सुप्रसिद्ध गीतकार हरिवंशराय बच्चन की निम्नलिखित पंक्तियां स्मृति में सहसा कौंध जाती हैं —

"मंदिर-मस्जिद बैर बढ़ाते
मेल कराती मधुशाला ।" 11

इसी बात को लेकर बेकल उत्साही साहब अपनी गज़ल के शेर में इस प्रकार कहते हैं ---

"हम कहीं हिन्दू कहीं मुस्लिम बने बैठे रहे ।
धर्म के चौपाल पर सारा वतन जलता रहा ।।" [12]

हमारे यहां छः दिसम्बर-1992 के दिन धार्मिक उन्माद में जिस विवादास्पद ढांचे को (बाबरी मस्जिद को) ढहाया गया उसके कारण हमारे यहां तथा बांग्ला देश तथा इश्लामाबाद में खूब खून-खराबा हुआ था । उसी संदर्भ में मेरे निर्देशक डॉ० पारूकान्त देसाई जी का एक शेर है जो इस धार्मिक उन्माद की निरर्थकता को व्यंजित करता है---

"मंदिर तेरा टूट गया है, मस्जिद तेरी टूट गई है ।
हिन्दू-मुस्लिम बांट रहे हैं, मानवता का मलवा-मलवा ।।" [13]

इसी भाव-भूमि पर उनका एक दोहा भी मिलता है ---

" कबीरा तू कुछ भी कहे, हुआ अनुचित काम ।
टूटा निकेतन रहीम का, रोते होंगे राम ।।" [14]

अभिप्राय यह है कि धर्म के तत्त्वाभिनिवेशक अभिलक्षणों को यदि ग्रहण किया जाए तो उससे मानव जात का कल्याण अवश्यमेव हो सकता है । लेकिन विडम्बना यह रही है कि ऐसा नहीं हो पाया है । सभी धर्मों की प्रतिगामी ताकतों (Fundamentalist) ने धर्म को मानव कल्याण के मार्ग से विच्युत करके उसे विपरीत दिशा में मोड़ दिया है । समता और न्याय के स्थान पर उसमें विशमता के बीज बो दिए गये हैं । धर्म के ठेकेदारों द्वारा रचित शास्त्रों ने शोषण की ही बुनियाद पर धर्म के भवन का निर्माण किया । परिणाम यह हुआ कि धर्म सबलों के हाथों में हथियार के मानिंद आ गया । धर्म के साथ प्रभुवर्ग का गठबंधन हो जाने से शोषण का यह शस्त्र और भी पैना और जानलेवा हो गया । धर्म ने ऊंच-नीच पर आधारित जातिवाद को पोषित किया है । धर्म के नाम पर जो कपोल-कल्पित बातें प्रचारित हुई, उससे हमारे यहां बहुत बड़े वर्ग के

साथ अमानुषी व्यवहार होता रहा । उदाहरणतया हम वैदिक ऋषि के निम्न लिखित सूक्त को ले सकते हैं, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि की उत्पत्ति के विषय में कुछ संकेत किया गया है ---

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत् ।।" [15]

अर्थात् ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र पैरों से उत्पन्न हुआ । इस सूक्त का अनुमोदन बाद में लगभग एक सौ अठारह ग्रन्थों में हुआ है । [16] इस धार्मिक प्रचार के कारण हिन्दू समाज के एक वर्ग विशेष को, दलित वर्ग को सदा-सदा के लिए निम्नता के गर्त में डाल दिया गया ।

§1§ धर्म और अस्पृश्यता की समस्या :--

यद्यपि पूर्ववर्ती अध्याय में सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत अस्पृश्यता की समस्या को व्याख्यायित किया गया है, तथापि यह कहना समुचित होगा कि यह समस्या जितनी सामाजिक इतनी धार्मिक भी है । बल्कि धर्म के गलत अर्थघटन के कारण ही इस समस्या का उद्भव हुआ है । ढकोसलाबाज पण्डे-पुरोहितों ने इसे बढ़ावा दिया है । स्वामी विवेकानन्द छुआ-छूत की भावना से बहुत ही चिढ़ते थे । उन्होंने कहा था -" हमारा धर्म रसोई घर में है, हमारा ईश्वर खाना बनाने के बर्तन में/ है, हमारा सिद्धांत है मुझे न छुआ, मैं पवित्र हूं ।" [17]

ब्रिटिश शासनकाल के प्रारंभ में हम देखते हैं कि हमारे देश में करोड़ों हिन्दू अछूत माने जाते थे । इनके साथ असह्य और अकथनीय अत्याचार होते थे । दक्षिण में तो यह प्रथा अपने उग्रतम रूप में थी । वहां उच्च-जातियाँ निम्न जातियों के स्पर्श से ही नहीं, अपितु छाया तक से अपवित्र हो जाती थी । "कोचीन की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ब्राह्मण नायर के स्पर्श से दूषित हो जाते थे, किन्तु कम्मलन §राज, बढ़ई, लुहार, चमार§ ब्राह्मणों को 24 फिट की दूरी से अपवित्र कर देता था, ताड़ी निकालने वाला 36 फिट से

चेरूमत कृषक 48 फिट से और परेमन ﴾गौमांस भक्षक परिहा﴿ 64 फिट से । यह संतोष की बात थी कि इससे पुरानी रिपोर्टों में परिहा 72 फिट की दूरी से अपवित्र करने वाला माना गया है । अभागे अछूत शहरों से बाहर रहते थे, मंदिरों में इनका प्रवेश वर्जित था, क्योंकि सब भक्तों का उद्धार करने वाले देवता भी इनके दर्शन से दूषित हो जाते थे । ये कुंओं से पानी नहीं भर सकते थे , अस्पतालों और पाठशालाओं का लाभ नहीं उठा सकते थे । ये उच्च वर्ग के बेगार आदि के अत्याचार सहते हुए बड़े दुख से बड़े नारकीय जीवन की घड़िया गिनते थे ।" [18]

अज्ञेय द्वारा प्रणीत उपन्यास "शेखर एक जीवनी" ﴾भाग-एक ﴿ में बताया गया है कि मद्रास राज्य, आज के तमिलनाडु में अछूत जाति को पंचम, कहा जाता है । यह पंचम, कुलीन ब्राह्मण के पास भी नहीं फटक सकता, उसे कुलीन ब्राह्मणों से कुछ गजों की दूरी पर रहना पड़ता है । यहां तक कि कहीं-कहीं तो ब्राह्मणों के लिए अलग सड़के बनाई गई हैं, उन पर पंचम, नहीं चल सकते । नदी पार करने के लिए पंचम, पुल का उपयोग भी नहीं कर सकते । ब्राह्मणों के पड़ोस में पंचम जाति के लोग भूमि नहीं ले सकते । कभी ब्राह्मण और पंचम का सामना हो जाए तो जोर-जोर से चिल्लाकर पंचम को यह बताना पड़ता है कि वह पंचम है, ताकि उसकी छाया कुलीन ब्राह्मण को अपवित्र न कर दे ।" [19]

प्रस्तुत उपन्यास में शेखर के विचार बड़े क्रान्तिकारी हैं, वह अछूतों के लिए रात्रि-पाठशाला खोलता है । एक स्थान पर वह सोचता है— "... गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा इन सबका पानी तो धर्म और भक्ति में घुल-मिल घुल कर प्राणहीन हो गया है ... जीवन, चिरंतन कहीं है तो ऐसे ही गन्दले नालों में, जो समाज की नींव - इन अछूतों के बीच में से होते हुए फिर उपेक्षित बहे जा रहे हैं ।... उन पतितपावनी कहलाने वाली नदियों का पानी तो वैसा ही भरा हुआ है जैसा पण्डितों का पाण्डित्य, तभी तो वह पानी चिताओं को सींचने में अस्थियों को बहाने में काम आता है ।" 20

डॉ0 राम दरश मिश्र के उपन्यास "सूखता हुआ तालाब" में इस समस्या से सम्बन्धित एक प्रसंग वर्णित है । घूरपत्री का बेटा मुरतिया नांद भरने के लिए कुंए पर चढ़ गया था । उसने देखा नहीं था कि रामलाल भी पानी भर रहे हैं । बस इसी बात पर रामलाल नाराज होकर मुरतिया को एक झापड़ रसीद कर देता है । मुरतिया रोता हुआ जब घर आता है तो उसकी मां गुस्से में कहती है —" बड़े पतिहा बने फिरते हैं । बाप से नहीं पूछते कि कोई हरवाहिन बची हुई नहीं है, जिससे मुंह न मारा हो ।" 21

बाला दूबे कृत "मकान दर मकान" उपन्यास में अछूत समस्या को उद्घाटित किया गया है । यह तो एक सर्वाधिक तथ्य है कि आर्य समाज ने सर्वप्रथम अछूतों को गले लगाने का प्रयास किया था । आर्य समाजियों का मानना था कि अछूत भी आखिर मनुष्य ही हैं और आर्य जाति के हैं, अतः उनके साथ छुआ-छूत का भेद नहीं बरतना चाहिए । अपनी बात के प्रचार के लिए एक सभा का आयोजन होता है उसमें आर्य समाजी पंडित और अछूत लोग धुले हुए साफ कपड़े पहन कर आते हैं । उस सभा में कुछ पुराने सनातनी लोग भी कौतुकवश जाते हैं । सभा में जो चर्चा-विचारणा होती है, उसके कारण ब्राह्मणों तथा वैश्यों में दो वर्ग बन जाते हैं —"हरिजन के हाथ से लड्डू खाने वाले और हरिजन के हाथ से लड्डू न खाने वाले" । बाद में सनातन पंथी लोग इस बात को लेकर पंचायत बिठाते हैं और जिन्होंने हरिजनों के हाथ से लड्डू खाये हैं, उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाता है । यह निर्णय सुनाने वाले थे गंगाप्रसाद जी । पंडित शंभुनाथ दयाल तब भेदभरी दृष्टि से उन्हें देखते हैं । पंडित गंगा प्रसाद जब आगरा फोर्ट स्टेशन पर पार्सल क्लर्क थे, तब उन्होंने रावत पांडे के झिंगुरिया भंगी के पार्सल को चुरा लिया था । पार्सल मिठाई का था । यह मिठाई स्वयं गंगा प्रसाद जी ने खाई और अपने परिवार वालों को भी खिलाई । वस्तुतः झिंगुरिया भंगिन ने मिठाई का यह पार्सल अपने परिवार वालों को भेजा था । किसी बड़े आदमी के यहां भोज हुआ था । उस भोज के जूठन के साबुत टुकड़े

झिंगुरिया ने भेजा था । यह रहस्य तब प्रकट होता है, जब पार्सल न पहुंचने पर झिंगुरिया सिकायत दर्ज करवाता है । तब पंडित गंगा प्रसाद झिंगुरिया भंगी को पचीस रूपये देकर मामला किसी प्रकार रफे-दफे कर देता है ।

प्रेमचन्द कृत "गोदान" उपन्यास में लेखक ने मातादीन और दातादीन के माध्यम से अस्पृश्यता समस्या पर करारे प्रहार किये हैं । मातादीन सिलिया चमारिन से प्रेम करता है । अकेले में उसका थूक भी चाट लेता है, पर सिलिया का मातादीन के घर में प्रवेश निषिद्ध है । जाहिर में वह सिलिया का छुआ हुआ पानी नहीं पीता । दोनों बाप-बेटे ऐसा मानते हैं कि पूजा-पाठ तथा खान-पान बरकरार रहे तो फिर कुछ भी किया जा सकता है । उनका धर्म इसी पर टिका हुआ है । अतः एक दिन चमार टोली के लोग मिलकर मातादीन के मुंह में हड्डी का टुकड़ा डाल देते हैं और इस तरह मातादीन को भी अछूत बना देते हैं । इसका बड़ा ही सटीक वर्णन प्रेमचन्द जी ने किया है —" आज से वह अपने घर में ही अछूत समझा जाएगा.. एक क्षण पहले जो लोग उसे देखते ही पालागन करते थे, अब उसे देखकर मुंह फेर लेंगे । वह किसी मंदिर में भी न जा सकेगा, न किसी के बरतन-भांडे छू सकेगा ।" [22]

§2§ मंदिर प्रवेश की समस्या :—

वस्तुतः यह समस्या भी अस्पृश्यता की समस्या से जुड़ी हुई है । अछूत जातियों पर जो अनेक प्रकार की धार्मिक निर्योग्यताएं §

§ थोपी गई, उनमें एक यह भी है कि वे किसी मंदिर में जाकर भगवान के दर्शन नहीं कर सकते या भगवान की पूजा नहीं कर सकते । यदि कोई अछूत मंदिर में घुस जाता है, तो उससे भगवान तथा मंदिर दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं । पूर्ववर्ती अध्याय में सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत इस मुद्दे की थोड़ी-बहुत चर्चा हुई है ।

"कर्मभूमि" उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने एक प्रसंग का वर्णन किया है, जिसमें ठाकुर द्वारा में कथा चल रही थी । कथा के बीच ब्रह्मचारी जी

का ध्यान अचानक इस बात की ओर जाता है कि कथा सुनने वालों की पिछली कतारों में कुछ अछूत लोग भी बैठे हुए कथा सुन रहे हैं । तब वे जूता लेकर उन्हें पीटने लगते हैं । जब यह बात भगवान के अन्य भक्तों को पता चलती है तो वे भी जूता लेकर अछूतों की पिटाई शुरू कर देते हैं । स्वामी आत्मानंद सोटा लेकर ब्रह्मचारी को मजा चखाने के लिए झपटते हैं लेकिन डॉ. शांति कुमार उन्हें शांत करते हैं और अछूतों का पक्ष लेकर ब्रह्मचारी समरकान्त आदि से बहस करते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में अछूतों के मंदिर प्रवेश को लेकर आन्दोलन भी चलता है । उसमें अनेक अछूत मारे जाते हैं । गोली चलने पर कुछ लोग भाग खड़े होते हैं, तब लाला समरकान्त की बहू और अमरकान्त की पत्नी डॉ. शांतिकुमार वाला मोर्चा संभालते हुए भागने वालों को ललकारते हुए कहती है—"भाईयों ! क्यों भाग रहे हो ? यह भागने का समय नहीं, छाती खोलकर सामने खड़े होने का समय है । दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों का होम करते हो । धर्मवीर ही ईश्वर को पाते हैं । भागने वालों की कभी विजय नहीं होती । जहां इतने आदमी मर गये, वहां मेरे मर जाने से कोई हानि न होगी । भाइयों, बहनों, भागो मत, तुम्हारे प्राणों का बलिदान पाकर ही ठाकुर जी तुमसे प्रसन्न होंगे । " 23

अछूतों का यह बलिदान अकारथ नहीं जाता । मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह सफल होता है ।

गोविन्द वल्लभ पंत वैसे तो नाटककार हैं परन्तु उन्होंने अनेकों उपन्यासों की भी रचना की है । उनके उपन्यासों में हमें कुमाऊं प्रदेश का परिवेश मिलता है । उनके "जूनिया" उपन्यास का नायक जूनिया छुआछूत के तिरस्कार और अपमान से गांव छोड़कर भाग जाता है । शहर में जाकर वह ईसाई हो जाता है । बचपन में अंजाने में जूनिया ने गोसाईं जी की बावली से पानी पी लिया था । इस कारण जूनिया की बहुत बुरी तरह पिटाई हुई थी । इस संदर्भ में वह अपनी मां से कहता है —" मां बावली में

पानी बहता हुआ था । बहता पानी सदा शुद्ध होता है उसे कौन जूंठा कर सकता है ?" 24

यही जूनिया जब बड़ा होता है तब जवानी के दिनों में एक दिन जंगल में जाता है । जंगल में नर-भक्षी बाघ से प्राण बचाने के लिए उसे मंदिर में आश्रय लेना पड़ता है । जब गांव वालों को इसका पता चलता है, तब वे लोग उसकी बुरी तरह से पिटाई करते हैं । इस घटना के बाद जूनिया शहर चला जाता है और पिटर लाल नामक एक ईसाई प्रचारक की प्रेरणा से ईसाई बन जाता है । यहां यह तथ्य ध्यातव्य रहे कि पिटरलाल भी पहले हिन्दू ही था पर हिन्दुओं द्वारा अपमानित और तिरस्कृत होकर ही वह ईसाई हुआ था । मंदिरवाली घटना को लेकर जूनिया कहता है --" देव मंदिर मंदिर की इमारत मेरे पुरखों ने एक-एक पत्थर ढोकर चिनी थ है । उनके अंदर की मूर्तिया भी उन्होंने ही गढ़ी है । वे देवता की पूजा कर वरदान लेने वाले हो गए और हम उनके चरणों की धूल । जब काल हमें निगलने के लिए जबड़े फैलाता है, हम उसके अंदर जाकर अपनी प्राणरक्षा भी नहीं कर सकते ।" 25

डाॅ० आरिग पुड़ि के उपन्यास "नद्दी का शोर" में भी इस समस्या को उठाया गया है । इस उपन्यास में प्रदेश का मुख्य जमींदार नदी पर बांध बनवाने का ठेका लेता है । बांध बनाकर उसे तोड़ने का षडयंत्र भी वही रचता है । इसमें वह कुछ हरिजनों की सहायता लेता है । अतः उन लोगों की सहानुभूति पाने के लिए ठेकेदार एक मंदिर का निर्माण करवाता है । मंदिर का निर्माण होगा और उसमें हरिजनों का प्रवेश होगा, इस बात से ही वे लोग बहुत प्रसन्न हो जाते हैं । मंदिर बनता है और उसमें हरिजनों का प्रवेश भी करवाया जाता है, परन्तु इसका कोई अर्थ नहीं रहता, क्योंकि वह मंदिर केवल हरिजनों का मंदिर बनकर रह जाता है । गांव के लोग इस मंदिर में आते रहे तो इससे अच्छा तो यह होगा कि यह मंदिर खण्डहर हो जाय क्योंकि यह पवित्र मंदिर हरिजनों की अशुद्ध उपस्थिति से भ्रष्ट और

कलुषित हो गया है । मंदिर में मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए ब्राह्मणों को बुलाया गया था । परन्तु जैसे ही हरिजनों ने मंदिर प्रवेश किया, वैसे ही कुछ ब्राह्मण अपने शाल वगैरह लेकर पीछे के द्वार से मंदिर के बाहर चले गये । उनका विचार था कि हरिजनों के प्रवेश से मंदिर की पवित्रता भ्रष्ट हो गयी है ।" [26]

ब्रजभूषण द्वारा प्रणीत "मंगलोदय" उपन्यास में डॉ0 उदय एक आदर्शवादी और प्रगतिवादी युवक है । लखन उसका मित्र है । लखन अछूत है । उदय जब डॉ0 बनकर गाँव लौटता है, तब लखन अछूत होने के कारण उदय के साथ खाना खाने में संकोच करता है । परन्तु उदय उसकी एक नहीं सुनता । वह लखन को अपने साथ बिठाता ही है । इस घटना के कारण पुजारी उदय को मंदिर प्रवेश से रोकता है । इस पर उदय कहता है-- "पोथियों का धर्म अब थोथा हो गया । अब तो इन्सानी धर्म का दौर है पुजारी जी । जो इन्सान इन्सान से नफरत करना सिखावे वह धर्म नहीं अधर्म है ।" [27]

इसी उपन्यास में एक और घटना वर्णित है । पुजारी का बच्चा कुंए में गिर जाता है, तब लखन उस बच्चे को बचा लेता है । तब कलंदर पुजारी से कहता है --" अछूत के हाथ लगी संतान अब आपके किस काम की ?" [28] पुजारी अपनी बात पर लज्जित होता है । छुआ-छूत की पुरानी मान्यताओं पर से अब उसका विश्वास उठ जाता है । पर तब ऐसा ही एक दूसरा पुराण पंथी बंशीलाल कहता है --" लखन किससे पूछकर कुंए में उतरा ? गोपाल की तो जान ही खतरे में थी, अब तो सारे गांव का धरम करम ही खतरे में पड़ गया ।" [29] तब मंगला उसको आड़े हाथों लेती है और बंशी की सारी पोल-पट्टी खोल देती है । मंगला कहती है --" वह और उसके पिता पिछले दस वर्षों से उसके खेतों में मजदूरी कर रहे हैं, तो हम अछूतों के हाथ लगने से तुम्हारे सारे खेत अछूत क्यों न हो गए । जहां जुल्म करने और गरीबों को सताने की बात आती है वहां छूत आड़े आ जाती है । छुई-

मुई जैसा धरम-करम लिए बैठे हों बंशी महाराज ? ।" 30

§3§ धर्म के नाम पर दलितों के साथ राजनीति करने की समस्या :---

धर्म के नाम पर दलितों के साथ किस प्रकार की राजनीति खेली जाती है, उसका एक उदाहरण हमें "राग दरबारी" उपन्यास में मिलता है। नेवादा नामक गांव में चुनाव हो रहा था। कई जातियों के लोग चुनाव लड़ रहे थे, परन्तु मुख्य प्रतिद्वन्द्वी केवल दो थे, जिनको ऋग्वेद के अनुसार पुरूष - ब्रह्म का मुंह और पैर §ब्राह्मण और शूद्र§ माना गया है। ब्राह्मण उम्मीद-वार ने पहले तो सांस्कृतिक स्तर पर अपनी बात समझानी चाही, परंतु जब देखा कि मुंह पैर की ताकत के सामने कमजोर पड़ रहा है तब उन्होंने प्रचार के लटके को धर्म के झटके से परिवर्तित कर दिया। एक बाबा जी को बुलाया, गया। उन्होंने अपने फिल्मी-धुनों पर आधारित भजनों के आधार पर पहले तो गांव वालों को सम्मोहित किया और फिर धीरे-धीरे धर्म और भगवान की आड़ में मतदाताओं के मन को आलोड़ित करते हुए ब्राह्मण उम्मीद-वार के पक्ष में उनका हृदय परिवर्तन करा दिया। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास "प्रेम एक अपवित्र नदी" में भी पंचानन नामक एक चोर को स्वामी मरूतानन्द बनाकर उसको चुनाव में प्रयोग किया जाता है।" 31

डॉ० राही मासूम रजा के उपन्यास "आधा गांव" में सुखरमवा चमार का बेटा परसुरमवा एम.एल.ए. हो जाता है। फलतः कुछ उंची जाति के लोगों के मन में वह कांटे की तरह खटकता है। फलतः उसके सामने "चरित्र-हनन" का झूंठा मुकदमा खड़ा किया जाता है। और इस प्रकार परसुराम को उक्त पद से हटाया जाता है।

डॉ० आरिग पुडि के उपन्यास "अभिशाप" का कथा नायक पद्म-नाभन अछूत जाति का है। अपनी बुद्धि-प्रतिभा, लगन, मेहनत, और चतुराई से वह आई.ए.एस. आफीसर बन जाता है। आई.ए.एस. आफीसर बनने के बाद पदम नाभन ठाट-बाट से रहते हैं। एक ब्राह्मण कन्या के साथ विवाह

करते हैं । एक क्लब में मेम्बर हो जाते हैं, जहां प्रायः अभिजात वर्ग के लोग ही उसके सदस्य हुआ करते थे । फलतः पद्मनाभन भी कुछ लोगों की नजर में खटकने लगते हैं । अतः उनके सामने भी जांच-कमेटी बिठाई जाती है , और उनको पद से हटा दिया जाता है । बाद में अदालत ने उनको सजा दी तो इसके कारण उनकी नौकरी भी चली गई ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अभिजात वर्ग के एक से एक घाघ भ्रष्टाचारी लोग मौज करते हैं और कोई दलित वर्ग का व्यक्ति ऊपर उठता है तो किसी न किसी प्रकार से उसे गिराने की चेष्टा की जाती है ।

§4§ दलित जातियों द्वारा धर्मान्तरण की समस्या :---

दलित जाति के लोगों को भांति-भांति से सताया जाता है । उनके साथ अन्याय और अत्याचार होता है । ज्यादातर लोग इन सब अत्याचारों को बर्दास्त कर लेते हैं, परन्तु कभी-कभार कुछ लोग इस अन्यायी व्यवस्था को सहन नहीं कर पाते । और तब वे धर्म परिवर्तन करते हैं । जब हमारे देश में मुसलमानों का शासन स्थापित हुआ, तब बहुत से दलित जाति के लोगों ने मुस्लिम धर्म अंगीकार किया था । उसके बाद ब्रिटिश काल में अंग्रेज शासकों के साथ-साथ ईसाई धर्म प्रचारक पादरी भी आये । और उन्होंने दलित जाति के लोगों को अपना लक्ष्य बनाया । सन् *8 1910 में लण्डन टाइम्स में मद्रास के बिशप ने दावा किया था कि पिछले 40 वर्षों में, केवल तेलुगू प्रांत में §हाल का तमिलनाडु प्रदेश§ लगभग दो लाख पचास हजार पंचम §तमिलनाडु की एक अछूत जाति§ ईसाई बन गये हैं । त्रावणकोर में सात लाख अछूत ईसाई बने । [32]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अछूत जाति के लोग या दलित जाति के लोग कई बार धर्म परिवर्तन करते हैं । उनके इस धर्मान्तरण के पीछे सहस्त्राधिक वर्षों से जो पिछड़ी जातियों का शोषण हो रहा है और उनके साथ जो अमानवीय व्यवहार हो रहा है, वह मूल कारण है । कई लोग ऐसा

समझते हैं कि धन-दौलत की लालच में दलित लोग प्रायः ईसाई धर्म अंगीकार करते हैं । परन्तु यह सत्य नहीं अर्धसत्य है । कोई भी व्यक्ति रोटी के टुकड़े के लिए धर्म परिवर्तन नहीं करता है । परन्तु उसको जो अपमानित किया जाता है, प्रताड़ित किया जाता है, उसके साथ जो अमानुषी व्यवहार होता है । उसे जानवरों से भी बदतर समझाजाता है , वहां उसकी आत्मा को चोट पहुंचती है । और उसके कारण ही धर्म परिवर्तन की घटनाएं घटित होती हैं । इस बात का प्रमाण हमें जगदीश चंद्र के उपन्यास "धरती धन न अपना " में मिलता है । "धरती धन न अपना" का नंदसिंह शिल्पकार है, चमड़े के जूते बनाता है । घोड़ेवाहा गांव के अन्य चमारों की तुलना में उसे आर्थिक दृष्टि से कुछ ठीक-ठाक समझना चाहिए । यह एक सर्वविदित तथ्य है कि कारीगर आदमी कभी भूखा नहीं मरता है । परन्तु नन्द सिंह धर्म - परिवर्तन करता है । पहले सिक्ख धर्म अंगीकार करता है और बाद में ईसाई धर्म में बापतिस्मा लेता है । नन्द सिंह यह कहता हैं क्योंकि उसको "चमार" शब्द से घृणा थी । "चमार" शब्द को वह गाली समझता है, और कोई उसे "चमार" कहे, वह उसके आत्मसम्मान को गंवारा नहीं है । एक स्थान पर वह काली से कहता है कि ईसाई होने से हमें सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि अब हम "चमार" नहीं रहे हैं । [33] नन्द सिंह की इस बात से यहीं प्रमाणित होता है कि धन की लालच के कारण नहीं , परन्तु अपमान की तिक्तता के कारण ही वह धर्म परिवर्तन करता है ।

गोविंद वल्लभ पंत द्वारा प्रणीत "जुनिया" उपन्यास में उपन्यास का प्रमुख पात्र जुनिया है । बाघ से अपने प्राण बचाने के लिए वह मंदिर में आश्रय लेता है । इस बात को लेकर गांववाले उसकी बहुत पिटाई करते हैं । तब वह गांव छोड़ने के लिए विवश हो जाता है । शहर में जाकर वह पिटर-लाल नामक व्यक्ति को मिलता है । पिटरलाल ईसाई प्रचारक है । पिटर लाल जुनिया को समझाते हैं —" और तुम अपना भी कोई धर्म नहीं बताते हो । तुम्हारा कोई धर्म नहीं । तू सदियों से कुचली हुई जाति का है ।

उठ जाग, वह तेरे ही लिए वैकुण्ठ के समस्त सुखों को लात मार कर मृत्यु लोक में अवतरित हुआ है , उसने तेरी ही बेड़ी काटने के लिए अपने को सूली पर लटकाया है... एक ही मंदिर में बैठ कर सभी प्रभु का भजन करते हैं । जुनिया उसके प्रकाश को देख और उसके संकेत को समझ, वह तुझे सही और सीधे मार्ग पर ले जाएगा ।" 34

ईसाई बनकर जुनिया जब अपने गांव जाता है, तब लोग उसको "डूम है डूम है" कहकर उसकी हंसी उड़ाते हैं । जब वह एक प्रचार सभा में लोगों को सम्बोधित करने के लिए आगे बढ़ता है, तब लोग उसे डूम कहकर पुकारते हैं । जुनिया उनकी परवाह किये बिना साहस के साथ कहता है -- "हां, जुनिया निःसन्देह डूम है । यौवन में उसने खेतों में बीज बोया था । उस बीज को खाने से फिर भूख लग जाती थी । आज वह लोगों के हृदय में प्रभु नाम के बीज बोया है । उसमें जो फल फलता है उससे फिर भूंख नहीं लगती ।" 35

इस प्रकार जुनिया ईसाई हो जाता है , और उसे हिन्दू धर्म से इतनी घृणा हो जाती है कि वह मरते समय अपने बच्चों तथा पत्नी समक्ष अपनी अंतिम इच्छा प्रकट करता है —"वहां मेरी क़ब्र बना देना । उस क़ब्र के निकट एक देवदारू का वृक्ष लगा देना और एक पत्थर पर "जुनिया : एक गरीब ईसाई" खुंदवा कर लगवा देना ।" 36

भगवतीचरण वर्मा द्वारा प्रणीत उपन्यास "सीधी सच्ची बातें" में जगत प्रकाश एक आदर्शवादी पात्र है । हमारे समाज में जो जातिभेद और ऊंच-नीच है, उसे लेकर वह काफी दुखी रहता है । वह सोचता है, यह ब्राह्मण अपने को देवता कहता है, यह क्षत्रिय अपने को राजा कहता है , यह बनिया अपने को धनपति कहता है और फिर आता है शूद्र । यह अपने को सेवक कहता है, अपने को गुलाम कहता है , अपने को परजा कहता है । यह पतित हो, यह कायर हो, यह निर्धन हो, बात यहीं खत्म नहीं हो जाती — इन शूद्रों के बाद आते हैं, अछूत, धानुक, चमार, पासी । इनसे भी नीचे हैं-

चाण्डाल । इन लोगों को छुआ तक नहीं जाता । ये सब अपनी-अपनी *f* स्थिति से संतुष्ट हैं या संतुष्ट रहने को विवश हैं । इनकी चेतना कुंद कर दी गई है ।[37]

प्रस्तुत उपन्यास में मिस मंडल का एक तेजस्वी पात्र आता है । जगत प्रकाश के पूछने पर कि क्या आप बंगाली हैं ? मिस मंडल उत्तर देती है —" हां बंगाली अछूत । लेकिन अब अछूत नहीं रह गई हूं, क्योंकि मैं ईसाई बन गई हूं ।"[38] तब जगत प्रकाश मिस मंडल दूसरा पूरक प्रश्न पूंछता है कि आप ईसाई बनी है या आपके पिता जी ? उसके उत्तर में मिस मंडल कहती हैं —" मैं ईसाई बनी हूं । मेरे पिता अब भी हिन्दू हैं । उसके पास अच्छी संपत्ति है और वह बहुत बड़े नेता हैं । बंगाली की मिनिस्ट्री में वे किसी न किसी दिन आ जाएंगे । उन्होंने मुझे ईसाई बनने से बहुत रोंका, लेकिन मैं नहीं मानी । जिस धर्म में मनुष्य का अपमान हो, मनुष्य लांछित समझा जाय वह धर्म दूषित है ।[39]

बाला दूबे कृत "मकान दर मकान" उपन्यास में भी धर्मान्तरण की घटना को लियाआ/य/ गया है । सुमेरा भंगी की लड़की किस्नो और ग्यार-सिया चमार लड़के द्वारका के बीच प्रणय संबंध विकसित होते हैं । किन्तु दोनों तरफ के जात-बिरादरी वाले लोगों के कारण उन दोनों का प्रणय परिणय में बदलने में कठिनाई सामने आती है । तब वे दोनों भागकर शहर चले जाते हैं और शहर जाकर ईसाई हो जाते हैं । उन्हें वहा अस्पताल में झाड़ू-पोंछा की नौकरी मिल जाती है । अब वे न भंगी रहे न चमार, उनकी इज्जत होने लगती है । और वे गिरजाघर जाने लगते हैं । इस घटना के बाद वे दोनों हिन्दू धर्म के जातिगत खोखलेपन को उजागर करने में जुट जाते हैं, और अपने अन्य भाई-बिरादरी को भी ईसाई बन जाने के लिए प्रेरित करते हैं । एक स्थान पर द्वारका कहता है —" ईसाई बन जाओ सुखों और इज्जत से रहो । सरकारी नौकरी मिलेगी । कोई जा बेजा काम नहीं करना पड़ेगा । और तुम्हीं देखो, हमारे पुरखे कितने ढोंगी हैं । अरे भंगी और चमार बन कर

किसी के पास बैठ कर दिखाओ तो जानें । फौरन दुत्कार करके भगा दिये जाओगे । पर ईसाई बनते ही चाहे जिसकी बगल में बैठ जाओगे । वह तुम्हें पास बैठने देगा । बातचीत भी करेगा । फिर क्यों इस जिल्लत को ढोए जा रहे हो ?" 40

उक्त उदाहरणों से यह प्रमाणित होता है कि हिन्दुओं में धर्मान्तरण होने का मूल कारण जाति व्यवस्था और छुआछूत है । जिस समाज किसी जाति विशेष में पैदा होने के कारण किसी मनुष्य को नींचा माना जाय उस धर्म, सम्प्रदाय और समाज को त्याग देना ही श्रेयस्कर होता है । इस प्रकार की भावना से प्रेरित होकर लोग प्रायः धर्म परिवर्तन करते हैं ।

§2§ नैतिक समस्याएं :---

धर्म, नीति, सामाजिक मान-मर्यादाएं आदि को लेकर जो अवधारणाएं बनी हैं, उनके कारण जो समस्याएं पैदा होती हैं, उनको हम नैतिक समस्याओं के अन्तर्गत रख सकते हैं ।

इन समस्याओं का अध्ययन दो दृष्टिकोणों से किया जा सकता है --§अ§ उंची जातियों का दृष्टिकोण तथा §ब§ दलित जातियों का दृष्टि-कोण ।

§अ§ उंची-जातियों का दृष्टिकोण :---

सहस्त्राधिक वर्षों से धर्मशास्त्र तथा पण्डा-पुरोहितों द्वारा पोषित एवं प्रचारित गलत धार्मिक मान्यताओं के कारण ब्राह्मणेतर सवर्ण - जातियों में भी जातिगत अभिमान तथा छुआ-छूत के झूठे खयाल पाये जाते हैं । गिरिराज किशोर के उपन्यास "यथा प्रस्तावित" में बालेसर हरिजन जाति का है , वह एक कार्यालय में चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी है । शहर के एक मुहल्ले में वह किराये के मकान में रहता है । वहां पास-पड़ोस वाले लोग उसे तथा उसकी घरवाली को बहुत परेशान करते हैं । बालेसर की पत्नी सिगड़ी

जलाती है तो उसे लेकर वे शिकायत करते हैं । उस सिगड़ी से निकला हुआ धुंआ उनके घरों में जाता है, अतः उनके घर अपवित्र हो जाते हैं । ऐसा उन लोगों का मानना है । इस सन्दर्भ में बालेसर की पत्नी कहती है --" जात के पवित्र ऐसी-ऐसी बकते हैं कि सुनी नहीं जाती । फिर भी ये पवित्तर के पवित्तर हैं और हम नीच और अपवित्तर दोनों । देह धरे का दण्ड है सो भोग रहे हैं । भागेंगे, नहीं भागेंगे । हम भागेंगे तो ये बच्चे हमसे पहले भाग खड़े होंगे । जीते जी न तो कुंए खत्त में गिरा जाय न जात बदल कर बेजान हुआ जाय ।" 41

नौकरी लगने के तीन-चार वर्ष बाद बालेसर को सरकारी क्वार्टर आबंटित होता है, तब एक अछूत का पडोस में आ जाना तथाकथित सवर्ण कर्मचारियों को अखरने लगता है । इन क्वार्टरों में दो-दो क्वार्टरों के बीच एक-एक गुसलखाना तथा पाखाने की व्यवस्था थी । बालेसर और उसकी पत्नी अपने पडोशी शर्मा जी तथा उनकी घरवाली की सुविधाओं का खूब ध्यान रखते थे, फिर भी शर्मा जी की पत्नी के मन में जो उंच जाति का अभिमान था, उसके कारण एक दिन वह पाखाने को ईटों के टुकडों से बच्चों द्वारा बंद करवा देती है और इसका आरोप बालेसर के परिवार पर लगाया जाता है । बालेसर की पत्नी को कहा जाता है कि वह पाखने में हाथ डाल कर उन सारे टुकड़ों को बाहर निकाले और पाखाने को साफ करे । बालेसर की पत्नी के मना करने पर उसे तथा उसके बच्चों को बुरी तरह से पीटा जाता है । बालेसर कार्यालय में जब इस बात को लेकर शिकायत दर्ज करवाता है तो उसकी जांच के लिए एक अधिकारी को भेजा जाता है । जांच प्रतिवेदन में बालेसर की घरवाली को ही दोषी करार दिया जाता है । इस प्रकार के"मत्स्य न्याय" के अनेक उदाहरण हमें प्रस्तुत उपन्यास में मिलते हैं ।

बाला दूबे कृत उपन्यास "मकान दर मकान" का हरखू धोबी बड़े प्रेम से जज साहब के कपड़ों को धोकर उनकी इस्त्री करके उनके घर पहुंचाता है । जज साहब से वह पैसे भी नहीं लेता । परन्तु हरखू जब जज साहब के पैर छूने

लगता है तब जज साहब पीछे खिसक जाते हैं । हरखू के पारिश्रमिक के पैसे हजम करने में जज साहब को कोई परहेजी नहीं है, परन्तु उसके द्वारा चरण - स्पर्श करने में उनकी पवित्रता भ्रष्ट हो जाती है । इसी हरखू धोबी का पुत्र रामरंग जब पुलिस में डिप्टी बन जाता है, तब गांव के लोग कहते हैं--" "अरे भैया, नानक चंद, डिप्टी साहब सुने हैं कि धुंबिया है । राम-राम ना जाने का लिखा है हमारे भागों में जो इन लोगन की भी जी-हजूरी कर रहे हैं ।" [42] यह एक ध्यातव्य तथ्य है कि डॉ० साहब बाबा साहेब आम्बेडकर जब बड़ौदा राज्य में गायकवाड की नौकरी में थे तब उनके मातहत सवर्ण जाति के लोग उनके साथ बड़ा अपमानजनक व्यवहार करते थे । इस प्रकार यहा असवर्णों के अधिकारी बन जाने पर सवर्ण लोगों में जो हीन भावना फैलती है, उसको लेखक ने भली भांति प्रदर्शित किया है ।

राम कुमार भ्रमर द्वारा प्रणीत "एक अकेला" उपन्यास में सरबती देवी नामक एक दलित जाति की महिला जब जिलाधीस बनकर आती है, तो गांव के ठाकुर जो स्वयं जाहिल और गंवार हैं, एक उच्च शिक्षित एवं प्रशासनिक सेवारत महिला के प्रति अपमानजनक शब्दों का व्यवहार करते हैं, जो उनके वार्तालाप से प्रकट होता है —" सुना है म चमट्टी है ।... चमट्टी भलही हो, है तो कलक्टर... यों समझों कि सूअरनी के शरीर पर सुरसति की फोटो चिपकी है ।" [43] इसी उपन्यास में एक मजेदार प्रसंग आया है । ईसुरी पंडित का लड़का प्रि-मेडिकल परीक्षा में कई-कई बार फेल हो जाता है । अन्ततः वे आठ सौ रूपये रिश्वत देकर अपने लड़के के पीछे हरखू धेबी के छोटे भाई परमूलु धोबी का नाम लगा देते हैं । इस प्रकार ईसुरी पंडित का पुत्र भ भगवानदास परभू धोबी का पुत्र हो जाता है । जब भगवानदास मेडिकल कालैज के लिए चयनीत हो जाता है, तब ज्ञात होता है कि उसकी तरह कितने ब्रामन-बनिये टेम्पररी चमार-धोबी बनकर डाक्टर बन रहे हैं । और अपनी जाति छिपाने के चक्कर में लगे हुए हैं । दूसरी तरफ इस समस्या का एक दूसरा आयाम भी इसी उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है । ज्यूडिशियल अफसर मोती

लाल जाति के चमार हैं, परन्तु दूसरे लोगों को वे बताते हैं कि वे जाति के गडरिया हैं । गडरिया भी कोई ऊंची जाति नहीं है, परन्तु उसकी गणना अछूत जातियों में नहीं होती है । गुजरात में अब एक नया ट्रेन्ड ﴾ ﴿ चला है , जिसमें बहुत से दलित जाति के युवक जो सरकारी आरक्षण कोटा से लाभान्वित होकर डॉक्टर-इन्जीनियर बन गये हैं, या बड़े अफसर बन गये हैं, वे अपनी दलित जाति को छिपाने के लिए शर्मा, शाह , पाठक, परीख जैसी "सरनेम" लिखवाने लगे हैं ।

वैसे साधारण गरीब मध्यम वर्ग के लोग, प्रकृत्या बुरे नहीं होते, परन्तु धर्म या नीति के संबंध में उनके मस्तिष्क में गलत विचारों का आरोपण होने से उनके नैतिक दृष्टिकोण में बदलाव आ जाता है । वे धर्माडम्बर को ही असली धर्म समझने लगते हैं । "गोदान" के मातादीन की भी यही समस्या है । केवल पूजा-पाठ और खान-पान को ही वह धर्म समझता है, परन्तु प्रायश्चित वाली घटना के बाद धार्मिक पाखण्ड से उसका विश्वास उठ जाता है और वह सिलिया को अपना लेता है । बृजभूषण कृत "मंगलोदय" उपन्यास में पुजारी पहले छुआ-छूत को खूब मानता था । डॉ० उदय अछूत लखन के साथ बैठकर खाना खाते हैं तो पुजारी उदय को भी मंदिर में प्रवेशने नहीं देता । परन्तु उसी पुजारी का बच्चा जब कुंए में गिर जाता है, तब पुजारी लखन के पांवों में पड़ जाता है और अपने बच्चे को बचाने के लिए बिनती करता है । लखन कुंए में कूद पड़ता है और पुजारी के बच्चे को बचाता है, तब पुजारी की आंखें खुलती हैं और उसे सच्चा मानवधर्म क्या है उसकी पहचान होती है ।

इस प्रकार वस्तुतः यदि देखा जाए तो सामान्य लोगों में दलित लोगों के लिए बुरे भाव नहीं होते हैं, परन्तु उनमें उस प्रकार के भावों को पैदा करने का कार्य धर्म के ठेकेदार और पण्डा-पुरोहित करते हैं । सामान्य लोगों में ब्राह्मणों और मंदिर के पुजारियों के प्रति आस्था होती है और इस आस्था का यदि सकारात्मक प्रयोग किया जाय तो सामाजिक उन्नति के कई काम हो सकते हैं । इन्दिरा दीवान के उपन्यास "अन्त नहीं" में यही

स्थापित किया गया है कि चाहे तो हमारे धार्मिक स्वामी और आचार्य सामाजिक कल्याण की दिशा में क्या कुछ कर सकते हैं । गुजरात में डेढ सौ दो सौ वर्ष पूर्व स्वामी सहजानंद ने ऐसा कार्य किया था । उनके प्रयत्नों से कई दलित लोगों ने भी चोरी-चकारी और मांस-मंदिरा को त्याग दिया था । वर्तमान समय में इस प्रकार का कार्य रविशंकर महाराज ने किया था । वस्तुतः ऐसे स्वामी आचार्य या धार्मिक मुखिया जिनके प्रति सामान्य लोगों को आस्था है, वे यदि चाहे तो जनप्रवाह के मोड़ को बदल सकते हैं । उनके नैतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन ला सकते हैं । परन्तु अपने न्यस्तहितों की रक्षा के लिए वे लोग ऐसा नहीं करते हैं और बृहद समाज को हमेशा हमेशा के लिए अन्धकार की गर्त में धकेल देते हैं । इससे सामान्य लोगों का देश, समाज तथा राष्ट्र का अहित तो होता ही है, परन्तु दलित लोगों को तो इसके कारण नरक से बदतर यातनाओं से गुजरना पड़ता है ।

गोपाल उपाध्याय कृत "एक टुकड़ा इतिहास" की चनुली अपने पति द्वारा त्याग दिये जाने पर मास्टरनी बन जाती है । परन्तु लोग उसको एक शिक्षिका के रूप में स्वीकार नहीं करते । वस्तुतः ऐसी बातों में धर्म के ठेकेदार कहे जाने वाले लोग सामान्य, अनपढ़, गरीब जनता में जातिगत समस्या का एक शगूफा छोड़ देते हैं, बाद का कार्य तो लोग संभाल लेते हैं । बिलकुल इसी तरह कोमी दंगों के समय होता है । सामान्य लोगों में हिन्दू-मुस्लिम को लेकर कोई बैर-भाव नहीं होता । परन्तु नाजुक मौकों पर धर्म की राजनीति करने वाले बड़े चातुर्यपूर्ण ढंग से कोई शगूफा छोड़ देते हैं और मरते हैं । बेचारे निर्दोष लोग । यहां चनुली वाले मामले में भी ऐसा ही होता है, सामान्य लोगों को चढ़ाया जाता है, भराया जाता है । बाद का मोर्चा ये सामान्य लोग संभाल लेते हैं । यथा—" क्या आप सरस्वती के पवित्र मंदिर में एक डोमणी आकर बैठेगी ? उनके अपने बच्चे, बीठ-ब्राह्मणों की कन्याएं, अम्बा-अम्बिके, अंबालिका - सी पवित्र कन्याएं क्या एक डूमणी से विद्यादान लेंगी ? क्या डूमणी को सिर झुकाकर प्रणाम करेंगी ? क्या जीवन भर डूमणी की

शिक्षा पर जिएंगी ?" 44

§ब§ दलित जातियों का दृष्टिकोण :---

सहस्त्राधिक वर्षों से दलित जातियों का जो शोषण हुआ है और जिस प्रकार व्यवहार उनके साथ हुआ है, उसके कारण दलित जातियों में भी एक प्रकार की लघुताग्रंथी पाई जाती है । जहां किसी सवर्ण की ओर से सहानुभूति का एकाध शब्द सुनने को मिलता है तो वे फूलकर कुप्पा हो जाते हैं । शैलेश मटियानी के उपन्यास "नागवल्लरी" में इसका एक उदाहरण दृष्टि-गोचर होता है । भोगाव गांव के डूम जाति के लोगों ने अपने अधिकारों की रक्षा हेतु यह तय किया था कि अब कोई भी डोम मरे हुए ढोर को खींचने नहीं जाएगा । गांव के पुरोहित के यहां भैंस मर जाती है, तब कोई भी डोम उसे खींचने को तैयार नहीं होता । अन्त में एक बूढ़े डोम को "सतजुगि-या आदमी" कहकर उसकी भावनाओं को उभारा जाता है । वह अपने दूसरे साथी के साथ वहां पहुंचता है । ये दोनों बूढ़े मिलकर भैंस को तैसे-तैसे खींच-कर ले तो जाते हैं, पर उसी में नारायण का बापू, वह "सतजुगिया आदमी" दम तोड़ देता है ।

उसी प्रकार "मकान दर मकान" उपन्यास में जब इसुरी पंडित का लड़का प्रि.मेडिकल परीक्षा में पास नहीं हो पाता, तब उसे परभू धोबी का पुत्र बनाया जाता है । उस समय हरखू धोबी अपने भाई परभू धोबी को खूब समझाता है । हरखू धोबी इसे एक गौरव की बात समझता है कि इसुरी पंडित जैसा व्यक्ति अपने पुत्र को परभू धोबी का पुत्र घोषित करता है । परन्तु हरखू धोबी को यह मालुम नहीं है कि यह नाटक केवल मेडिकल कॉलेज में दाखिल होने के लिए ही है । और इस प्रकार इसुरी पंडित की योजना में साथ देकर वह अपने ही किसी दूसरे भाई का नुकशान कर रहा है ।

गलत नैतिक ख्यालों के कारण ही दलितों में भी उंच-नीच के बखेडे पाए जाते हैं । "धरती धन न अपना" उपन्यास का काली अपने ही

जाति भाई मंगू की बहन ज्ञानो को चाहता है । ज्ञानो भी काली को चाहती है । प्रेम की इस प्रक्रिया में वे दोनों नैतिक मर्यादाओं को लांघ जाते हैं । फलस्वरूप ज्ञानों को काली से गर्भ रह जाता है । काली ज्ञानों से विवाह करने के लिए प्रस्तुत है, परन्तु एक जाति (Caste) के होते हुए भी उनमें कुछ ऐसा बखेड़ा है कि दोनों पक्ष के लोग उस विवाह के लिए तत्पर नहीं होते । ज्ञानों से विवाह करने के लिए काली ईसाई तक होने को तैयार है, पर ज्ञानों उम्र लायक नहीं है, अतः पादरी उसके लिए तैयार नहीं होता । ज्ञानों की मां इसे नीति और प्रतिष्ठा का प्रश्न बना देती है । सवर्ण जातियों में तो ऐसे प्रसंगों में गर्भ गिरा दिया जाता है । डॉ० रामदरश मिश्र के उपन्यास "सूखता हुआ तालाब" में ऐसा ही निरूपित हुआ है । परन्तु यहां ज्ञानों की मां ज्ञानों को जहर देकर मार डालती है और इस प्रकार अपनी प्राणप्यारी पुत्री की हत्या कर देती है ।

"सूखता हुआ तालाब" उपन्यास की चेनइया चमारिन को गांव के जमींदार सेवकराम से गर्भ रहता है । सेवकराम तो मुंह काला करके भाग जाता है, परन्तु चेनइया न तो गर्भ गिरवाती है, न होने वाले बच्चे के पिता का नाम बताती है । इस बात के लिए वह गांव तक को छोड़ देती है ।

"मकान दर मकान" उपन्यास की भंगी लड़की किश्नो और चमार लड़का द्वारका के विवाह में भी इसी प्रकार नैतिक प्रश्न को खड़ा किया जाता है । दोनों पक्षों के लोग मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं । दोनों जातियों में लट्ठ मार लड़ाई होती है । अन्ततः दोनों शहर भागकर ईसाई हो जाते हैं । इस प्रकार इस जातिगत संकीर्णता के कारण अन्ततः नुकसान तो समग्रतया हिन्दू जाति का ही होता है, परन्तु अपने संकुचित स्वार्थों में लोग इस बात को विस्मृत कर जाते हैं ।

7 "गोदान" और "रंगभूमि" जैसे उपन्यासों में भी हम यही देखते हैं कि उनके दलित पात्र अपनी नैतिक मान्यताओं के कारण अनेक प्रकार के संकट पाते हैं । होरी जिसे "मरजादा" कहता है, उसके पालन के लिए वह

हमेशा आर्थिक संकटों का शिकार होता रहता है और त्रासदी यह है कि अन्ततः उनके खातिर ही वह खेत-मजदूर हो जाता है । यह कितनी बड़ी मानवीय त्रासदी कि जिंदगीभर "मरजादा" के लिए जूझने वाले होरी का "गोदान" बारह आना पैसों से किया जाता है ।

उच्च वर्ग के लोग दलित जातियों का अपमान करे, या उनको छोटा समझे, यह तो एक बार समझ में आ भी सकता है, परन्तु कई बार दलित जाति के लोग ही एहसासे कमतरी-लघुताग्रंथि के कारण अपनी ही जाति के व्यक्ति का अपमान करते हैं । "धरती धन न अपना" उपन्यास में मंगू काली को अपमानित करने का एक भी मौका हाथ से जाने नहीं देता । डॉ० आरिग पुड़ि के उपन्यास "अभिशाप" में उसका नायक पंचनाथ्भन ऊँचे पद पर पहुंचने के बाद अपनी ही जाति-बिरादरी के लोगों से असम्मानजनक व्यवहार करता है । गोपाल उपाध्याय कृत "एक टुकड़ा इतिहास" में चनुली जब कान्तमणि के घर में रहने चली जाती है, तब उसकी जाति के लोग उसका बहिष्कार करते हैं । यहां तक कि उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके अन्तिम संस्कार में भी वे लोग नहीं आते ।

श्री चंद अग्निहोत्री के उपन्यास "नयी बिसात" का मातादीन अपनी लड़की रामकली को पढ़ाता है । एक वर्ष की अवस्था में उसकी सगाई तथा पांच साल की अवस्था में उसकी शादी हो गई थी । पहले तो बिरादरी के रिवाजों के अनुसार उसने यह कर दिया था, परन्तु बाद में वह मुन्शी भैया नामक एक गांधीवादी सेवक के परिचय में आता है । मुन्शी भैया वकालत छोड़कर एक आश्रम खोलते हैं और चमार तथा पासियों को संगठित करके उनके अधिकारों के लिए आंदोलन चलाते हैं । मुन्शी भैया के सहयोगी होने के कारण मातादीन की सोच-समझ में भी परिवर्तन आता है । अतः वह अपनी लड़की रामकली का गौना नहीं करवाता है । पंचायत जब इसका कारण पूंछती है तो वह बताता है—" पंचो ! बिटिया अभी पढ़ रही है । आठ दर्जा पास कर ले तो ... सरकार अपनी है । मान लो, लड़की पढ़-लिखकर

कहीं किसी स्कूल में ... लग जाय ।" 45

मातादीन के इस उत्तर पर पंचों में एक कहता है--" मातादीन ब्र यह बताओ, बाभन ठाकुर पढ़ाएंगे अपने बच्चे चमारिन से ?" 46

अब यहां प्रश्न यह उठता है कि दूसरी जाति के लोग तो दलित जातियों को अपमानित करते ही हैं । परन्तु स्वयं दलित जातियों में भी एक प्रकार लघुताग्रंथि होने के कारण वे भी अपना अपमान स्वयं करते रहते हैं । रामकली की शिक्षा को लेकर जाति पंचायत मातादीन को बिरादरी से अलग कर देती है । जहां मातादीन जैसे लोगों का अनुसरण करना चाहिए, वहां उसके विपरीत उसे दंडित किया जाता है । वस्तुतः इसके पीछे कुछ ऊंची जातिवाले लोगों का हाथ था । वे ही लोग पंचों को मातादीन के खिलाफ उकसाते हैं । कारण यह है कि मातादीन मुन्शी भैया का सहयोगी है और मुन्शी भैया उन तथाकथित अभिजातात्र वर्ग के लोगों की आंखों की किरकिरी है, क्योंकि उनकी समझ के अनुसार मुन्शी भैया इन चमार पासियों के "दिमाग" में राई भर रहे हैं । इसीलिए तो रामकली की मां क्रोध में आकर कहती है —" ये बाभन-ठाकुर हमारी इज्जत मरजादा कुछ समझते हैं । मुन्शी भैया जुग-जुग जिये ! हम चमार-पासी आदमी बन रहे हैं । बाभन-ठाकुर जलते हैं । ... चाहते हैं आल औलाद जन-बच्चे से गोबर उठावें, गोरू चरावें और लत्ता लपेटे रहें ।" 47

"धरती धन न अपना" उपन्यास में काली का मकान बनाने के लिए जो आता है, वह सन्ता सिंह भी दलित जाति का ही है । वह शिल्पकार है औ शिल्पकार भी दलित जातियों में आते हैं । परन्तु कारीगर हो जाने के कारण अन्य चमारों से वह स्वयं को थोड़ा अलग समझता है और इसीलिए वह काली से हमेशा "तू-तडाक" से बातें करता है —" मुझे नन्द सिंह ने बताया था कि काली और निक्कू में झगड़ा हो गया है । उस समय मुझे समझ में नहीं आया कि तेरा नाम ही काली है । सच्ची बात पूछो तो गांव में कुत्तों और चमारों की पहचान रखना मुश्किल है । आते-जाते रहते

हैं ना ॰ 48

इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि जातिगत नैतिक मान्यताओं के कारण बहुत से दलित जाति के लोग भी वर्णाश्रम व्यवस्था के ही ढोल पीटते हैं । वे भी अन्य उंची जातियों के लोगों की भांति इस अन्यायी और शोषणोन्मुखी व्यवस्था को ईश्वरीय और न्यायपूर्ण बताते हैं । वे भी पूर्व जन्म के कर्मों की दुहाई देते हैं और अगड़ी जाति के लोगों की तरह पाप-पुण्य की बातें करते हैं । कहीं-कहीं पर लघुताग्रंथि के कारण भी उनमें उक्त प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं ।

{3} संस्कारगत समस्याएं :---

साधारणतया जब हम किसी व्यक्ति को "संस्कारी" कहते हैं, तो उससे हमारा अभिप्राय उसके गुणवान, शीलवान और धार्मिक होने से होता है । संक्षेप में उच्च, मानवीय गुणों से युक्त व्यक्ति को हम संस्कारी कहते हैं । परन्तु यहां संस्कार शब्द का प्रयोग एक दूसरे अर्थ में हो रहा है । यहां उसका अर्थ है मनुष्य की मूलभूत वृत्तियां {

{ दूसरे शब्दों में कहें तो जातिगत या परिवेशगत जीवन-शैली या आदतों को हम मनुष्य के संस्कार ऐसी संज्ञा देते हैं । यह संस्कार अच्छे भी हो सकते हैं, बुरे भी हो सकते हैं ।

संस्कारगत समस्याओं की बहुत-सी बातों की विवेचना पूर्ववर्ती पृष्ठोंक्ष में नैतिक समस्याओं के अन्तर्गत कर दी गई है, तथापिक्ष यहां कतिपय समस्याओं पर चर्चा करना हम आवश्यक समझते हैं ।

बहुत-सी वाणी और व्यवहार की बातें संस्कारगत समस्याओं के अन्तर्गत आते हैं । इस संदर्भ में अमृतलाल नागर द्वारा प्रणीत "नाच्यो बहुत गोपाल"उपन्यास को लिया जा सकता है । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने मेहतर-भंगी समाज की कुछ संस्कारगत बुरी आदतों का सूक्ष्म एवं ब्यौरेवार वर्णन किया है । प्रस्तुत उपन्यास में मोहना नामक भंगी को निर्गुण नामक

ब्राह्मण कन्या प्यार करती है । वस्तुतः यह प्यार उसकी दमित वासनाओं के कारण है । गरीबी के कारण निर्गुण की माँ उसका विवाह मसुरिया दीन नामक एक बूढ़े व्यक्ति से कर देते हैं । मसुरिया दीन बूढ़ा है, अतः निर्गुण की यौन-इच्छा को वह पूर्णतया संतुष्ट नहीं कर पाता । काम की आग जगाकर वह खिसक जाता है, इस पर निर्गुन पर वह पहरे बिठा देता है । बाहर के लोगों से उसका मिलना-जुलना वह बन्द करवा देता है । यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति पर जब किसी बात को लेकर पाबंदी लगाई जाती है, तो उस वस्तु के प्रति उसका आकर्षण अनेक गुना बढ़ जाता है । फलतः निर्गुण एक दिन मोहना के साथ भाग जाती है और निर्गुण से निर्गुणिया बन जाती है । उसे लेकर मोहना पहले तो अपनी माँ के पास जाता है । परन्तु पुलिस के डर से माँ उसको वहाँ से भगा देती है । तब वह निर्गुण को लेकर अपनी माँई {मामी} के पास जाता है ।

उसकी माँई का निगुनिया के प्रति जो व्यवहार है उसमें हम उसकी संस्कारगत आदतों को देख सकते हैं । निर्गुन को लेकर वह जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग करती है, जिस प्रकार गालियाँ बकती है, वह सब उसके संस्कारों के कारण है । वह उसे रण्डी, छिनाल, हरामजादी, कलमुंही, जैसी गालियाँ देती है । नागर जी ने तो फिर भी गालियों के वर्णन में कुछ संयम बरता है, अन्यथा इससे भी गयी-गुजरी गालियाँ ऐसी स्त्रियाँ बोल सकती हैं । निर्गुन को सर्वप्रथम माँई का हुक्का-चिलम भरने का काम सौंपा जाता है । निर्गुन जब इसका विरोध करती है, तब मोहना कहता है —" अरी छोड़ बम्हनों की बात । अब तो मेहतर है । हुक्का भरना पड़ेगा । मामू को देख-देख सीख लेना ।" 49

"हुक्का चिलम भरने के बाद बारी आई मैला उठाने की । माँई ने ठान लिया था कि वह निर्गुन को निर्गुनिया मेहतरानी बनाकर छोड़ेगी । अतः एक दिन जब सारे मरद चले गये तब उसने घर का कुण्डा बंद किया और पूरी निर्लज्जता के साथ मोरी पर हगने बैठ गई । फिर निर्गुण को

इशारा करके कहा कि इसे कमा कर टोकरे में डाल । निर्गुण ने मना किया इस पर उसकी खूब पिटाई हुई । छः दिन तक निर्गुन बिना कुछ खाये पड़ी रही । परन्तु सातवे दिन हिम्मत इकट्ठी करके नाक पर पट्टी बांधकर उसने मैला उठाने का काम किया । और इस प्रकार वह पूरी तरह से मेहतरानी बन गई । [50]

यहां पर मोहना की मांई का जो बर्ताव है, वह उसके संस्कारों के कारण है । घर के अन्दर मोरी पर एक स्त्री के सामने नग्न होकर टट्टी करने बैठना वैसे आम तौर पर संभव नहीं है । पीढ़ी दर पीढ़ी एक प्रकार का काम करते-करते एक प्रकार के संस्कार बन जाते हैं । मोहना की मांई को शायद इसमें अनुपयुक्त कुछ भी नहीं लग सकता है । कई बार गंदगी व्यक्ति के संस्कारों का (या कुसंस्कारों का) एक अंग बन जाता है । वैसे भी गंदगी और गरीबी के बीच चोली-दामन का साथ है । शताब्दियों से भयंकर गरीबी में जीवन-यापन करते हुए गंदगी किसी जाति-विशेष का लक्षण बन जाती है । यहां निर्गुन की दृष्टि से विचार करने पर हमें मांई का यह कार्य अत्याचार प्रतीत होगा । परन्तु यदि मांई की दृष्टि से विचार करें तो इसमें हमें प्रतिशोध या प्रतिहिंसा का भाव दृष्टिगोचर होगा । मांई लोगों के यहां का मैला बरसों से उठाती आ रही है, अतः उसके अन्तर्मन में उन लोगों के प्रति कहीं न कहीं घृणा का भाव छिपा है । निर्गुन ब्राह्मण कन्या है, अतः उससे मैला उठवा कर वह अपने प्रतिशोध को पूरा करना चाहती है ।

ठीक उसी प्रकार रांगेय राघव कृत उपन्यास "कब तक पुकारूं ?" में भी जातिगत संस्कारों से उद्भूत समस्याओं की ओर लेखक ने प्रकारान्तर से संकेत किया है । प्रस्तुत उपन्यास में खेल-तमाशा दिखाने वाले जरायम पेशा करनट लोगों की जिंदगी को चित्रित किया गया है । करनटों में स्त्री की यौन-शुचिता या यौन-पवित्रता पर ध्यान नहीं दिया जाता । करनट स्त्रियां बिना किसी अपराध-बोध के पर-पुरुषों के साथ यौन-संबंध रखती हैं । कईबार जब उनके पुरुषों को पकड़कर पुलिस ले जाती है, तब मुखिया या दारोगा से

शारीरिक संबंध बनाकर, उन्हें खुश करके अपने पुरूषों को छुडवा ले जाती हैं। ये सब काम वे बिलकुल सहज होकर करती हैं। इसमें उनको अयोग्य ऐसा कुछ लगता नहीं है। वे तो समझती हैं कि स्त्री का काम है। करनट पुरूष भी इसे ज्यादा गंभीरता से नहीं लेते। परन्तु उपन्यास का नायक सुखराम करनट स्त्री और ठाकुर पिता की औलाद है। अतः पुलिस का दारोगा जब पहली बार उसकी पत्नी प्यारी को बुलावा भेजता है, तब वह उसका विरोध करता है। पुलिस वाले मार-मार कर उसकी पीठ उधेड़ देते हैं। सिर पर भी कई जूते पड़ते हैं। जूतों में कील लगी हुई थी, अतः सिर में कई घाव पड़ जाते हैं। सुखराम के लिए यह एक संस्कारगत समस्या है। उसके भीतर ठाकुर का खून पड़ा हुआ है। वह ऐसे मौकों पर उछलता है। वह करनटों की जिंदगी को, उसके बाप की तरह घृणा और नफरत की नजर से देखता है। दूसरे करनटों की तरह चोरी-चकारी करने में भी वह झिझक का अनुभव करता है। यह सब उसके संस्कारों के कारण है। अन्यथा दूसरे करनट तो उसे बिलकुल सहज रूप से ही लेते हैं। इस प्रकार यहां देखते हैं कि एक जाति के लिए जो समस्या है, दूसरी जाति के लिए वह कोई समस्या ही नहीं है। यह सब संस्कारों का परिणाम है। "नाच्यौ बहुत गोपाल" की मांई को मैला उठाने में कोई समस्या नहीं है। अपने घर की मोरी पर भी वह कुदरती हाजत के लिए बैठ सकती है, पर निर्गुण के लिए वह एक बहुत बड़ी संस्कारगत समस्या है। उसी प्रकार "कब तक पुकारूं ?" की सोनू, प्यारी या कजरी के लिए अपने आदमी के लिए पर-पुरूष के साथ सोना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है क्योंकि उनके जो संस्कार बने हुए हैं इसमें ये बातें कोई अहमियत नहीं रखती।

"नाच्यौ बहुत गोपाल" का मोहना मेहतर है। जब उसकी मां बीमार पड़ जाती है, तब वह उसके स्थान पर मसुरिया दीन की हवेली पर संडास की सफाई के लिए जाता है। उसको भी मैला उठाना अच्छा नहीं लगता। एक स्थान पर मोहना कहता है —" कभी-कभी मैं सुन लेता हूं कि

मैं ठाकुर की औलाद हूं तब मुझे भी नफरत होती है कि दूसरे का मैला क्यों साफ करूं ? फिर सोचता हूं कि वो ब्राह्मण-ठाकुर ऊंची जाति के लोग ही साले हरामी हैं जो अपने मजे के लिए अपनी औलादों को इस हैसियत में पहुंचा देते हैं ।" 51

जगदीश चंद कृत "धरती धन न अपना" उपन्यास में भी संस्कारगत समस्या से जुड़ा हुआ एक प्रसंग सामने आता है । कोई चमार लड़का चौधरी लड़के को पीट देता है । इस बात को लेकर चौधरियों में यह आक्रोश जन्म लेता है कि एक चमार लड़के की यह मजाल कि वह हमारे लड़के को पीटे । अन्यथा बात कोई बड़ी थी नहीं, बच्चों में लड़ाई-झगड़े होते हैं, मार-पीट भी होती है, यह कोई नयी या अनहोनी बात नहीं है । परन्तु यहां यह समस्या इसलिए जोर पकड़ती है कि चौधरी लोग इसे अपना एक इगो प्रोबलम (Ego- Problem) बना लेते हैं । एक चमार लड़का चौधरी लड़के को पीटे उसमें उनको अपनी हेठी नजर आती है । अतः मामला उग्र स्वरूप धारण करता है, तब दोनों पक्षों के कुछ समझदार लोग पंचायत बुलाने की बात करते हैं । पंचायत में बाबा फत्तू चौधरियों को कहते हैं कि हुजूर हमारे बच्चे ने आपके बच्चे को मारा । हम मानते हैं कि यह बुरा हुआ । यह ठीक नहीं है । परन्तु मुझे तो इसमें भी आप लोगों का ही दोष नजर आता है क्योंकि आप लोग हमारी बहन-बहुओं-बेटियों से जब शारीरिक संबंध जोड़ते हैं तो यह बहुत संभव है कि इस लड़के में भी आप ही लोगों का खून हो । जब खून के संस्कारों की बात आती है तो चौधरी लोग शांत हो जाते हैं और सब हंसते हुए बिखर जाते हैं ।

इसी उपन्यास में मंगू के सामने ही उसकी बहन ज्ञानों की छातियों की तुलना कच्चे खरबूजे से की जाती है । कोई दूसरा भाई होता तो इसी बात को लेकर आग बबूला हो जाता । परन्तु मंगू ऐसा कुछ नहीं करता । दूसरे लोगों के लिए यह एक बहुत बड़ समस्या हो सकती है जातिगत अस्मिता की समस्या हो सकती है, परन्तु बरसों की गुलामी से और जानवरों जैसी

जिंदगी से जिस जाति की चेतना ही कुंद पड़ गई हो वहां जातिगत अस्मिता के ऐसे सवाल व्यक्ति को ज्यादा परेशान नहीं करते ।

यह आम-तौर पर देखा गया है कि ज्यादातर डकैत, ठाकुर या पिछड़ी जाति में से पाये जाते हैं । पिछड़ी जाति के लोगों में जिनकी जातिगत चेतना कुंद पड़ गई है, उनमें तो कभी कोई प्रतिशोध का भाव पैदा नहीं होता । उनमें प्रतिहिंसा की भावना भी कभी नहीं भड़कती । परन्तु उन जातियों में भी कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनकी जातिगत चेतना कभी न कभी उछाल मारती है और तब वे समाज के तमाम कायदा-कानूनों को एक तरफ करके असामाजिक तत्वों के साथ मिल जाते हैं । वे किसी "डाकू" या "डोन" गिरोह में सामिल हो जाते हैं । "नाच्यो बहुत गोपाल" उपन्यास का महोना भी डाकूओं के गिरोह में सामिल होकर डाकू बन जाता है । और तब वह उन तमाम ब्राह्मणं-ठाकुरों पर कहर बरसाता है जिन्होंने कभी उसका अपमान किया था । यादवेन्द्र शर्मा के उपन्यास "पत्थर के आंसू" में दरसन नामक ढोली जाति का युवक डाकू बन जाता है क्योंकि उसकी बहन किस्तुरी की इज्जत लूटने का प्रयास ठाकुर जीतसिंह करता है । किस्तुरी अपने शील की रक्षा के लिए महल से कूदकर आत्महत्या कर लेती है । अपनी बहन की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए दरसन डाकू बन जाता है और पूरे ठाकुर खानदान को समाप्त कर देता है ।

(4) शैक्षिक समस्याएं :---

यहां "शैक्षिक समस्याओं " से अभिप्राय शिक्षा के अभाव में जो समस्याएं पैदा होती हैं उनसे है । वस्तुतः सच्ची शिक्षा अपने आप में कोई समस्या नहीं है । शिक्षा का अभाव ही समस्याओं को पैदा करता है । पूर्ववर्ती अध्यायों में अनेक स्थानों पर दलित जातियों पर जो विविध प्रकार की निर्योग्यताएं (Disabilities) थोपी गई हैं, उनका निरूपण हुआ है । इन विविध निर्योग्यताओं में शैक्षिक नियोग्यता (Educational

Disabilities) भी एक प्रमुख निर्योग्यता थी । प्राचीन काल से शूद्र जाति को शिक्षा से वंचित रखा गया । उनको विद्याध्ययन करने का कोई अधिकार नहीं था । किसी प्रकार विद्या प्राप्त कर भी लेते तो उसका क्या परिणाम होता था वह हम एकलव्य की घटना से जान सकते हैं । शास्त्रों को वेदों को पढ़ने का भी उन्हें कोई अधिकार नहीं था । यदि कोई शास्त्र कथन उनके कानों में पड़ जाय तो धधकता शीशा उनके कानों में डाला जाता था । किसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान करने की उन्हें छूट नहीं थी । अभिप्राय यह कि शिक्षा-दीक्षा के हम मौके से उनको दूर रखा गया । 19 वीं -20 वीं शताब्दी में नवजागरण का जो आन्दोलन हुआ उसके कारण ही शूद्र जाति के बच्चों को भी पढ़ने का अधिकार मिला । इसके लिए भी उनको बहुत संघर्ष करना पड़ा । जो समाज सुधारक इस दिशा में अग्रसरित थे, उनको भी बहुत सहना पड़ा । सामाजिक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ा । ज्योतिबा फूले तथा डॉ० बाबा साहेब आम्बेडकर के जीवन चरित्रों से हम इस तथ्य से भली भांति परिचित हो सकते हैं । प्रारंभ में तो अछूत बच्चों के साथ दूसरी जाति के बच्चे बैठने को तैयार नहीं थे । अतः अछूतों के लिए अलग पाठशालाओं की व्यवस्थाओं का आयोजन हुआ था । उन पाठशालाओं में सवर्ण अध्यापक पढाने को तैयार नहीं थे । सर सयाजीराव गायकवाड़ के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि ऐसी पाठशालाओं के लिए उन्होंने दूसरे राज्यों से कुछ मुसलमान तथा इसाई अध्यापकों को आमंत्रित किया था । आगे चलकर इस वर्ग के कुछ मेधावी छात्रों में से सातवी-आठवीं कक्षा पास करके कुछ लोग प्राथमिक शालाओं में अध्यापक हुए तो उनको भी अनेक कठिनाई-यों का सामना करना पड़ा ।

गोपाल उपाध्याय द्वारा प्रणीत उपन्यास "एक टुकड़ा इतिहास" में चनुली अर्थात् चंदी देवी एक डूम जाति की लड़की है । वह सुंदर और सुशील है । कान्तमणि नामक एक ब्राह्मण युवक उसे प्रेम करता है और विवाह भी कर लेता है । परन्तु उसके बाद जो परिस्थितियां पैदा होती हैं, उनमें

कान्तमणि न केवल चंदी देवी को छोड़ देता है, परन्तु उस पर अमानवीय अत्याचार भी करता है । वह शारीरिक और मानसिक रूप से टूट जाती है । चनुली आठवीं तक पढ़ी हुई है, अतः गांव की पाठशाला में मास्टरनी बन जाती है लेकिन यहा और समस्या सामने आती है । गांव के लोग चनुली को अपने स्कूल में रखने के लिए तैयार नहीं थे । उनका मानना था कि सरस्वती के मंदिर में एक डूमणी के आ जाने से सरस्वती का वह मंदिर भ्रष्ट हो जाएगा, दूसरे एक डूमणी उनके बच्चों को क्या संस्कार दे सकती है ।" [52]

समाज में जातिवाद की जड़े कितनी गहरी हैं, उसका जिक्र "जल टूटता हुआ" उपन्यास में सतीश के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुआ है — "यहीं प्रायमरी स्कूल में हरिजन मास्टर आया है, वह डण्डों से बामनों, ठाकुरों के बच्चे को मारता नहीं है.... लेकिन लोग चाहते हैं कि चमार, चमार ही रहे , नाई नाई ही रहे ये भले ही बामन ठाकुर न रह गए हों । ये लोग हरिजनों की पढ़ाई का मजाक उड़ाते हैं, मानो इनकी हलवाही करने के लिए वे हमेशा चमार बने रहे ... ।" [53]

यहां किसी को प्रश्न हो सकता है कि सरकार ने तो इन जातियों को आरक्षण दे रखा है, फिर लोग एक शिक्षिका को अपनी पाठशाला में रखने के लिए इन्कार कैसे कर सकते हैं ? यहां गौरतलब बात यह है कि सरकार तो कायदे-कानून बनाकर एक तरफ बैठ जाती है, परन्तु उन कायदों का पालन होता है या नहीं, उसकी चिंता कोई नहीं करता । दूसरे कायदों में भी इतने छिद्र होते हैं कि लोग किसी को न लेना हो, तो कोई न कोई नुक्सा तो निकाल ही लेते हैं । अभी कुछ वर्ष पूर्व हमारे विश्वविद्यालय में व्याख्याता का एक स्थान अनुसूचित जाति के उम्मीदवार के लिए आरक्षित था । उस स्थान पर साक्षात्कार के लिए कई प्रत्याशी आये, उनमें एक तो हमारे ही विश्वविद्यालय का प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण ऐसा उम्मीदवार था । साक्षात्कार हुआ पर किसी को भी नहीं लिया गया । साक्षात्कार की रिपोर्ट में लिखा गया— " No suitable candidate is found " "

यहां उनको कोई पूछने वाला नहीं है कि आखिर Suitable की उनकी व्याख्या क्या है ? व्याख्याता के लिए लघुतम गुणांक 55 प्रतिशत माने गये हैं, अब यदि प्रथम श्रेणी के व्यक्ति को भी योग्य न समझा जाय तो इसका क्या इलाज हो सकता है । दूसरी तरफ हमारे ही विश्वविद्यालय में एक 51 प्रतिशत वाले ऊंची जाति के प्रत्याशी को व्याख्याता से भी ऊपर के पद रीडर के पद पर नियुक्त किया गया । कम प्रतिशत वाले को व्याख्याता नहीं बना सकते , किन्तु रीडर बना सकते हैं । गोया जो व्यक्ति क्लर्क नहीं बन सकता, उसे कलेक्टर बनाया जा सकता है । एक व्यंग्य कविता में बिलकुल सही कहा गया है ---

"मैं साफ दंगई कर जाऊंगा, क्या कर लोगे ?
मैं साफ नंगई कर जाऊंगा, क्या कर लोगे ?" [54]

या

"हम करें सो कायदा, हम करें सो न्याय ।
नीति-नियम सब कर रहे, हम को टाटा बाय ।।" [55]

वस्तुतः कोई भी सरकार आरक्षण-नीति इसलिए चलाती है ताकि उनको पिछड़ों के वोट मिले । उनको पिछड़ो के वोट से मतलब है, पिछड़ो से नहीं । अतः आरक्षण नीति का सख्ती से पालन किया जाय, ऐसा कोई नहीं चाहता ।

इसका अर्थ कतई नहीं कि आरक्षण का लाभ दलितों को ~~बिलकुल~~ बिलकुल नहीं मिला है । हमारा आशय केवल इतना है कि यह लाभ अभी तक जितना मिलना चाहिए उतना नहीं मिला है । पिछड़ी जाति के कुछ प्रतिभाशाली लोग अपनी प्रतिभा, लगन और परिश्रम के बलबूते पर ऊँचे पदों पर भी पहुंचे हैं । "अभिशाप" के पद्मनाभन आई. ए. एस. ऑफीसर हैं । "एक अकेला" की सरबती देवी जिलाधीश बन जाती है । "मकान दर मकान" के हरखू धोबी का पुत्र रामरंग पुलिस में डिपटी बन जाता है । "नाग वल्लरी" के कृष्णा मास्टर हाईस्कूल के अध्यापक हैं । इसी उपन्यास में डोम जाति के

दो-तीन अफसरों का जिक्र आता है, जो आरक्षण कोटा में आई.ए.एस. होकर जिलाधीश या डी.एम. हो गये हैं। "सीधी सच्ची बातें" की मिस मंडल के पिता चटगांव में बहुत बड़े बैरिस्टर हैं और कांग्रेस के नेता भी हैं। बंगाल की मिनिस्ट्री में किसी भी समय उसके प्रवेश की संभावना है।

यह तो उपन्यास में निरूपित पात्रों की बात है। उपन्यास भी जीवन का ही प्रतिबिंब है। समाज का यथार्थ ही इसमें आता है। हम अपने सांप्रत समय में भी दलित जाति के लोगों को कई उंचे स्थानों पर देख सकते हैं। परन्तु उंचे पदों पर उनका प्रतिशत बहुत कम है। उनकी आबादी के अनुपात में बहुत कम लोग अभी उंचे पदों तक पहुंच पाए हैं। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि यह करिश्मा शिक्षा के कारण है।

शिक्षा के कारण जहां दलित जाति के कुछ लोगों का जीवन-स्तर उपर उठा है, वहां उसके कारण दूसरे लोगों में कुछ निराशा भी फैली है। दलित जाति के जितने भी लोग पढ़े, उन सबको अच्छी नौकरियां मिले ही मिले, यह संभव नहीं है। अब बेरोजगारी इतनी बढ़ गई है कि दलित जातियों के शिक्षित वर्ग में भी बेरोजगारी का प्रमाण बढ़ रहा है। शिक्षित बेरोजगार दलित युवकों की स्थिति "त्रिशंकु" जैसी हो रही है। कहावत है--"धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।" बिलकुल यही स्थिति उन शिक्षित बेरोजगारों की हो रही है। शिक्षित होने के कारण मेहनत-मजदूरी के कामों से वे कतरा रहे हैं, दूसरी तरफ उनकी शिक्षा के अनुरूप नौकरी उनको मिल नहीं रही है। "नाग वल्लरी" उपन्यास का नारायर्ण इसका एक अच्छा उदाहरण है।

आलोच्य उपन्यासों में हम देखते हैं कि दलित जाति के लोगों में अनेक समस्याएं ऐसी हैं, जो शिक्षा के अभाव के कारण पैदा हुई हैं। उनमें भी उंच-नीच का जाति अभिमान है, वह अशिक्षा का परिणाम है। अशिक्षा के कारण उनमें संगठन का अभाव है। इसीलिए डॉ० बाबा साहब आम्बेडकर दलित जातियों को कहा करते थे --" शिक्षित बनो, संगठित बनो", "मकान

दर मकान", "धरती धन न अपना", "एक टुकड़ा इतिहास" जैसे उपन्यासों में हम देखते हैं कि दलित जातियों में ही परस्पर संघर्ष और वैरवृत्ति का भाव दृष्टिगोचर होता है । अज्ञान के अन्धकार के कारण बहुत-सी सड़ी-गली प्रथाओं को वे अब भी ढो रहे हैं और उसके कारण कर्जदार हो रहे हैं । अशिक्षित होने के कारण अगड़ी जाति के लोग हर तरह से उनका शोषण कर रहे हैं, जिनको आलोच्य उपन्यासों में रेखांकित किया गया है ।

इधर स्वाधीनता के पश्चात, एक नया परिमाण दृष्टिगोचर हो रहा है । गांव के सुखी संपन्न उंची जाति के लोग अपने बच्चों को शहर की अच्छी स्कूलों में पढ़ा रहे हैं । अतः गांव-खेडो और कसबों में अधिकांश पढ़ने-वाले बच्चे गरीब और पिछड़े तबके के होते हैं । अतः उनकी पढ़ाई पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता । बल्कि न्यस्तहित वाले लोग तो चाहते हैं कि इन स्कूलों में पढ़ाई ही न हो । शिक्षा विभाग के अधिकांश उच्च अधिकारी भी इसी संवर्ग के होते हैं, अतः वे भी पूरी तरह से लापरवाही बरतते हैं । पिछड़े तथा आदिवासी विस्तारों में जो पाठशालाएं हैं, वहां पर अनेक-अनेक दिनों तक शिक्षक गैरहाजिर रहते हैं । दूसरे इन शिक्षकों को शिक्षा से इतर ऐसे कई काम दिये जाते हैं, जिससे अध्यापन कार्य की ओर वे कम से कम ध्यान दे पाते हैं । गर्भ-नियंत्रण के लिए प्रयुक्त होने वाले निरोध के वितरण का काम भी उनको ही सौंपा जाता है । दिनांक 8-4-2000 के संदेश दैनिक में बड़ौदा जिले के एक गांव की स्कूल के समाचार प्रकाशित हुए हैं कि वहां शिक्षक अनेक दिनों तक गैरहाजिर रहते हैं । शिक्षकों की अनुपस्थिति में लड़के निरोध के फुग्गे बनाकर फुलाते हुए पाए गये । उन बच्चों में अनेक प्रकार की मानसिक विकृतियां पाई जाती हैं । लड़के पशु मैथुन करते हैं । बहुत छोटी उम्र में ही लड़के-लड़कियों में शारीरिक सम्बन्ध भी पाये जाते हैं ।[56] गांव की स्कूलों की यह स्थिति हमें "अलग-अलग वैतरणी", "जल टूटता हुआ", "सूखता हुआ तालाब", "राग दरबारी", "जहर चांद का" (गंगा प्रसाद मिश्र) प्रभृति उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती है । "अलग अलग वैतरणी" के हेड मास्टर जवाहर सिंह

रात में सोने के लिए अपने एक शिष्य को बुलाते हैं और उसके साथ सृष्टि विरुद्ध का कार्य करते हैं । "जल टूटता हुआ" के सुग्गन मास्टर को अध्यापन से ज्यादा दिलचस्पी अपनी खेती-बाड़ी में है । इधर सरकारी प्राथमिक स्कूलों प्रयोग के नाम पर एक शगूफा छोड़ा गया है । कायमी प्राथमिक शिक्षकों को अपने वतन का लाभ दिया जाता है । अभिप्राय यह हुआ कि शिक्षक जिस गांव का है उसी गांव में उसकी नियुक्ति होती है । परिणाम चौपट । उसका सारा ध्यान अपनी खेती-बाड़ी में रहता है । पढ़ान-बढ़ाने का काम तो एक तरफ रह जाता है । गांव का होने से कोई रोंकने-टोकने वाला नहीं होता । ये शिक्षक ग्रामीण राजनीति में रात-दिन डूबे रहते हैं । स्व. चिमनभाई पटेल जब गुजरात के मुख्यमंत्री थे, तब प्राथमिक शिक्षा (अलबत्त सरकारी प्राथमिक स्कूलों में) एक नये प्रयोग का नाटक शुरू हुआ था --"श्रेणी विहीन-शिक्षा पद्धति" । अर्थात् एक से चार कक्षाओं में किसी भी विद्यार्थी को अनुत्तीर्ण नहीं कर सकते । इस योजना से शिक्षा और सत्यानाश हुआ । हमें गांवों में ऐसे बहुत से बच्चे मिलते हैं जिनको एक से सौ तक की गिनती ठीक से नहीं आती और वे पांचवी-छठी कक्षा में पढ़ते हैं । कहना न होगा कि इन बच्चों में अधिकांश बच्चे दलित और पिछड़ी जातियों के होते हैं । एक गांव के बड़े आदमी का ध्यान जब इस ओर आकृष्ट किया जाता है तो उन्होंने साफ-साफ कहा--"ठीक है, इन सबको पढ़ाने की क्या जरूरत है ? ये लोग अगर पढ़-लिख जाएंगे तो हमारे खेतों में काम कौन करेगा ?" [57]

"राग दरबारी" उपन्यास के मास्टर मोतीराम का सारा ध्यान उनकी आटा चक्की की ओर ही रहता है । आपात धनत्व का सिद्धान्त भी वे आटाचक्की के माध्यम से समझाते हैं । पढ़ाते-पढ़ाते अक्षर वे अपने खेतों में निकल जाते हैं । अब ऐसी स्थिति में पढ़ाई क्या हो सकती है ? वस्तुतः ग्रामीण क्षेत्रों की स्कूलें सरकारी पैसों का दोहन करने की मशीनें मात्र हैं । "
"राग दरबारी" उपन्यास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता कि वहां की

स्थानिक छंगामल इन्टरमीडिएट कालेज से कोई मेधावी छात्र निकला हो और अब जो Privatisation का दौर चला है, उसमें तो केवल समर्थ और सम्पन्न को ही अच्छी शिक्षा मिलेगी। इसी उपन्यास में कौडिल्ला छाप न्याय की एक बात आती है। वैद्य जी कहते हैं कि ह हाई कोर्ट, सुप्रिम कोर्ट का न्याय तो बड़े लोगों के लिए है, देहाती हूंशों के लिए तो यहीं पंचायती-टाईप कौडिल्ला न्याय होता है।[58] ठीक उसी प्रकार हम कह सकते हैं कि अच्छी और उंची शिक्षा समर्थ और सम्पन्न वर्ग के लिए होगी, बाकी लोगों को तो "छंगामल" टाईप की स्कूलों में ही पढ़ना होगा, जहां उनको कम वेतनमान वाले "विद्यासहायक" और "सरस्वती उपासक" विद्यादान देंगे। कहना न होगा कि इन "बाकी लोगों" में किस वर्ग और वर्ण के लोगों का समावेश होगा।

इस प्रकार की शैक्षिक व्यवस्था के कारण दलित जाति के बहुत कम लोग शिक्षित हो पाए हैं। यदि सर्वेक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि दलित जातियों में शिक्षा का प्रमाण अन्य जातियों की तुलना में आज भी कम है। इस वर्ग में जो अत्यंत बुद्धिशाली और मेधावी हैं, वे ही लोग कुछ प्रगति कर सके हैं, जिनकी चर्चा हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं।

दलित जातियों में जो लोग शिक्षित हुए हैं, और जो सरकार की आरक्षण नीतियों से लाभान्वित हुए है, उनका अपना एक अलग संवर्ग बन गया है। "नागवल्लरी" के कृष्णा मास्टर जैसे लोग उसमें अपवाद हैं, अन्यथा ज्यादातर दलित वर्ग के अधिकारी अभिशाप के पद्मनाभन जैसा ही व्यवहार करते हैं। वे अपने वर्ग और जाति से कट गये हैं। उन्होंने समाज में अपनी एक नयी पहचान बनाई है या बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। यह एक ऐसा आयामश्र है, जो पिछड़ों के खिलाफ पड़ता है।

§5§ मनोवैज्ञानिक समस्याएं :---

यह प्रायः देखा गया है कि मनोवैज्ञानिक प्रकार की समस्याएं प्रायः शिक्षित, सम्पन्न, संभ्रांत अभिजात, संप्रभु वर्ग के लोगों में पाई जाती है । परन्तु दूसरे वर्गों में मनोवैज्ञानिक समस्याएं होती ही नहीं हैं ऐसा नहीं है । इतना कह सकते हैं कि अपेक्षाकृत इस वर्ग में ये समस्याएं कम पाई जाती हैं ।

दलित जातियों में जो प्रमुख मनोवैज्ञानिक बीमारी है -- वह है "लघुताग्रंथि" की बीमारी । वस्तुतः इस वर्ग के लोगों को जो हजारों वर्षों से प्रताड़ित किया गया है, शोषित किया गया है, दबाया गया है, इसके कारण उनमें लघुताग्रंथि § Inferiority Complex § का होना स्वाभाविक ही कहा जाएगा । "नाग वल्लरी" के कृष्णा मास्टर इसके अपवाद हैं , अन्यथा अधिकांश लोगों में यह ग्रंथि पाई जाती है । "नाग वल्लरी" उपन्यास में ललितराम, तिलकराम आदि दलित जाति के कमिश्नर और डी.एम. हैं । ये लोग अपने जिले के दौरे पर निकलते हैं, तो अपने वर्ग के लोगों को मिलने से कतराते हैं । तिलकराम तो ऐसे सवर्ण हरिजन §?§ हो गये हैं कि डूमियोल" से घिनाते हैं । [59] जिस वातावरण में पल-बढ़कर आगे बढ़े अब उसी से वे घृणा करते हैं । यह लघुताग्रंथि का परिणाम है ।

यहां एक मनोरंजक ~~क~~ किस्से की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा । गांव की दो लड़कियां थी । वे पक्की सहेलियां थी । खेतों में जंगलों में साथ-साथ जाती थी । जंगल से "गोरा सामली" §जिसे बहुत से लोग जंगल जलेबी कहते हैं§ तोड़ लाती थी और नजदीक के शहरों में जाकर बेंचती थी । अब हुआ कुछ ऐसा कि उनमें से एक का विवाह शहर में किसी संपन्न घराने में हो गया । कुछ महीनों बाद वह दूसरी लड़की "गोरस - आमली" लेकर संयोगवशात, उसी मुहल्ले में गई, जिस मुहल्ले में उसकी सहेली का ब्याह हुआ था । तब दूसरे मंजले से इतराते हुए वह ब्याहता लड़की

कहती है --" अरी ओ बाई, तेरी टोकरी में यह बांका-चूका गोल-गोल जलेबी जैसा क्या है ?" तब उस लड़की का ध्यान पूछनेवाली की ओर गया। उसने देखा कि यह तो उसकी वही सहेली है जो उसके साथ जंगल में "गोरस आमली" लेने आती थी। तब वह सबके सामने उसको खरी-खरी सुनाती है, परन्तु यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि इस प्रकार की स्थितियों से आने वाले लोग "लघुंताग्रंथि" के कारण अपने को बहुत बड़ समझने लगते हैं और पहले की स्थितियों को विस्मृत कर जाते हैं।

इस प्रकार की मनोवृत्ति नवधनिक वर्ग (Neo-capitalist) के लोगों में भी पाई जाती है। ऐसे कुछ नवधनिक वर्ग के लोग दलितों में भी पाये जाते हैं। इस वृत्ति के कारण कई बार उनमें प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की भावना भी पैदा होती है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास "जुलूस" में तालेवर गोली का एक पात्र आता है। तालेवर गोली पिछड़ी जाति का है पर अपने बुद्धिचातुर्य से बहुत-बड़ा जमींदार बन गया है। वह अब संप्रभु वर्ग में आ गया है। वह जान-बूझकर कुछ सवर्ण स्त्रियों को अपनी वासना का शिकार बनाता है और इस प्रकार वह इस प्रतिशोध को पूरा करता है, जो कभी सवर्णों ने उसके पुरखों के साथ किया होगा।

डॉ० आरिगपुडि के उपन्यास "अभिशाप" के नायक पद्मनाभन में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। वह अपनी सत्ता और पद का लाभ उठाते हुए उच्च वर्ण की स्त्रियों को अपनी वासना का शिकार बनाने के लिए विवश करते हैं।

"नाच्यौ बहुत गोपाल" उपन्यास में मोहना मेहतर की माई का निर्गुन के साथ जो व्यवहार है वह भी मनोवैज्ञानिक प्रकार का है। मोहना निर्गुन को भगाकर लाया है। थोड़े दिन उसको घर में ही रहना है। उससे मेहतरानी का काम लेना अत्यंत जरूरी बाबतों में नहीं है। बल्कि मानवीयता का तकाजा तो यह है कि निर्गुण के साथ सहानुभूति और सहृदयता का व्यवहार किया जाय। परन्तु मोहना की माई निर्गुण से चिढ़ती है उसके

दो कारणहैं । एक तो वह चाहती थी कि मोहना मेहतर जाति की लड़की से ही शादी करे ताकि कोई हौथ बटाने वाला मिले । दूसरे निर्गुण अपने साथ केवल पांच सौ रूपये लेकर आई थी । यदि वह मोटी रकम लेकर आती तो शायद उसके साथ का व्यवहार ऐसा न होता । मोहना की माई स्वयं मेहतर जाति की है और जिंदगीभर उसने उंची जाति के लोगों का मैला साफ किया है । अतः उसके अचेतन मन में (Uncosciouse mind) सवर्ण जातियों के प्रति एक घृणा और आक्रोश का भाव है । यह घृणा और आक्रोश का भाव वह और कहीं तो निकाल नहीं सकती । अतः मोहना जब निर्गुण को लेकर आता है, तब उसे अपनी भड़ास निकालने का एक मौका मिल जाता है । अतः जानबूझकर वह घर में मोरी के पास संडास करने बैठ जाती है और निर्गुन को मैला उठाने पर मजबूर करती है । [60]

दलित जातियों में जो उंच-नीच का संस्तरण (Hierarchy) जो पाया जाता है उसमें भी उनका मनोवैज्ञानिक न्याय (Psychological-Justice) कारणभूत है। हिन्दू समाज में दूसरी जातियों में उंच-नीच की जोगियां पाई जाती है । दलित जातियों के लोगों में इन उच्च जातियों को लेकर एक दबा हुआ-सा ईर्ष्या भाव होता है । अतः जब वे अनुभव करते हैं कि उनके भी नीचे कोई है तो उनको एक प्रकार की मानसिक संतुष्टि होती है । जिस प्रकार कुछ उंचे लोग उनको दबाते हैं, या उनको छोटा समझते हैं, उसी प्रकार वे लोग भी कुछ लोगों को छोटा समझ कर अपनी मानसिक संतुष्टि कर लेते है । वस्तुतः यह एक प्रकार का सुव्यवस्थित षडयन्त्र है जो हमारे धर्म और समाज के ठेकेदारों ने रचा है, ताकि निम्न जातियाँ संगठित न हो सकें, उनमें भी फाट-फूट हो । वस्तुतः यह "फूट डालो और राज करो" (Divide & Rule) की ही राजनीति है । परन्तु इतना तो असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि इससे दलित जाति के लोगों में एक प्रकार की आत्मसंतुष्टि पाई जाती है । "धरती धन न अपना" तथा "मकान दर मकान" उपन्यास में हम देखते हैं कि दलित

जातियों के इस संस्तरण के कारण ही दो प्रेमी-युग्मों का विवाह नहीं हो पाता है ।

लघुताग्रंथि के कारण ही दलित जातियों में सवर्ण जातियों के अनुकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती हैं । कपड़े, पहनावा आदि से लेकर रीति-रिवाजों में भी प्रायः उंची जाति के लोगों का अनुकरण पाया जाता है । इसमें अच्छी बातों का अनुकरण हो, इसे तो श्लाघ्य समझा जाएगा, परन्तु उंची जातियों में जो गलत रीति-रिवाज है उनका भी ये लोग अनुसरण करते हैं । कई बार तो यह भी देखा गया है कि उंची जाति के लोग जिन रीति-रिवाजों को छोड़ रहे हैं उनको ये लोग अपना रहे हैं । "जल टूटता हुआ", "अलग-अलग वैतरणी", "सूखता हुआ तालाब", "धरती धन न अपना ", "मकान दर मकान" आदि उपन्यासों में हम इन तथ्यों को परिलक्षित कर सकते हैं ।

पिछड़ी जातियों में धर्म परिवर्तन की जो पवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, उसके पीछे भी कई मनोवैज्ञानिक कारण पड़े हुए हैं । बहुत से लोग उसमें केवल आर्थिक कारणों की पड़ताल करते हैं, परन्तु यह समुचित नहीं है । जब कोई व्यक्ति हमें प्रताड़ित करता है तो उसके प्रति हमारे मन में प्रतिशोध या प्रतिहिंसा का भाव जागता है । दलित जातियों को भी अगड़ी जातियों द्वारा कई-कई तरह से प्रताड़ित किया जाता है, अतः उन जातियों के प्रति उनके मन में एक प्रकार के विद्वेष की भावना पैदा होती है । धर्म परिवर्तन के द्वारा उनका यह विद्वेष प्रतिफलित होता है । "सीधी सच्ची बातें" की मिस मण्डल बंगाली अछूत जाति की है । उसका मानना है कि जिस धर्म और समाज में किसी जाति विशेष में पैदा होने के कारण किसी मनुष्य को नीचा माना जाए उसको छोड़ देना ही श्रेयस्कर होगा । वह उपन्यास के एक पात्र जगत प्रकाश को कहती है--" मैं ईसाई बनी हूं । मेरे पिता अब भी हिन्दू हैं ।... उन्होंने मुझे ईसाई बनने से बहुत रोका, लेकिन मैं नहीं मानी । जिस धर्म में मनुष्य का अपमान हो, मनुष्य लांछित समझा जाय, वह धर्म

दूषित है । [61]

उपर्युक्त उदाहरण में मिस मण्डल के मन में हिन्दू जाति के प्रति जो आक्रोश है वह दिखाई पड़ता है । यदि हम इसके कारणों का विश्लेषण करें तो ज्ञान होगा कि शैशव से लेकर युवावस्था तक उसे जिन प्रताड़नाओं और प्रतारनाओं को झेलना पड़ा होगा, वह सब उसके मस्तिष्क के में संग्रहीत हुआ होगा । और वही अचानक एक दिन ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ा होगा ।

गोविन्द वल्लभ पंत के उपन्यास "जुनिया" का चरित्र नायक जुनिया डोम जाति का है । बाघ से बचने के लिए वह एक बार मंदिर का आश्रय लेता है । केवल इसी बात को लेकर गांव वाले उसे बुरी तरह से पीटते हैं । गांव छोड़ने के लिए वह विवश हो जाता है । इस अनादर और उत्पीडन के कारण ही जुनिया बपतिस्मा लेकर ईसाई हो जाता है । वह अंग्रेजी अंग्रेजी सीखता है और दिन-प्रति-दिन उन्नति करता है । पहले उसे चौकी-दारी की नौकरी मिलती है । बाद में उसे हिन्दी टीचर बना दिया जाता है । वह अपनी पढ़ाई जारी रखता है और पीटरलाल की मृत्यु के उपरांत वह ईसाई धर्म का प्रचारक हो जाता है । वह और उसकी पत्नी सानी दोनों ईसाई धर्म के प्रचारक हो जाते हैं । उन लोगों में हिन्दू धर्म के प्रति इतनी वितृष्णा है कि मरते समय वह अपनी पत्नी तथा बच्चों के सन्मुख अपनी अंतिम इच्छा प्रकट करते हुए कहता है कि जब मुझे कब्र में दफनाया जाय तो इस पर एक पत्थर रखकर खुदवा देना कि यहां जुनिया नामक एक गरीब ईसाई को दफन किया गया है । एक बार जुनिया जब गांव जाता है तो लोग उसे "डूम-डूम" कहकर चिढ़ाते हैं । तब जुनिया स्वयं से कहता है--
" जुनिया डूम है * क्या वे परमेश्वर के प्राणी नहीं हैं ? क्या उनकी छाया से भूमि में पाप और उसकी सांस से वायु मण्डल में विष फैलता है ? क्या वे मार्ग में चलने के लिए नहीं रौंदे जाने के लिए पैदा किये गये हैं ?" [62]

जगदीश चन्द्र के उपन्यास "धरती धन न अपना" में भी इस समस्या

को आंकलित किया गया है । उपन्यास के एक पात्र नंद सिंह को "चमार" शब्द से ही नफरत है । कोई जब उसे चमार कहता है तो उसे भीतर ही भीतर बहुत गुस्सा आता है । यह पूरा मनोवैज्ञानिक केश है । चमार जाति से जुड़ी हुई लांछनाएं और प्रताड़नाएं नंदसिंह के मनोमस्तिष्क में ऐसी चस्पा गई है कि इस शब्द से चिढ़-सी होने लगी है । फलतः पहले वह सिक्ख हो जाता है । परन्तु सिक्ख होने के बावजूद भी गांव के चौधरी लोग उसे चमार कहना बंद नहीं करते हैं । सन्तासिंह नामक एक पात्र एक स्थान पर कहता है—" सिक्ख बन जाने का यह मतलब तो नहीं कि वह चमार नहीं रहा । धर्म बदलने से जात तो नहीं बदल जाती ।" 63 अतः पादरी चिन्तराम से जब वह ईसाई धर्म के बारे में सुनता है तो वह एक बार फिर धर्म परिवर्तन करता है और सिक्ख से ईसाई हो जाता है । सिक्ख हो जाने के बाद के उसके घर परिवार वालों का जो चित्रण किया है वह पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है । जैसे कहावत में कहा गया है —" नया मुल्ला नव बार नमाज पढे ।" ठीक उसी प्रकार नन्द राम भी सवाये ईसाई होने का ढोंग करता है । नन्दराम की पत्नी स्लीपर पहन कर रसोईघर में जाती है, इतना ही नहीं वह यह बात दूसरे लोगों को भी जताती है । एक स्थान पर नन्द सिंह काली को ईसाई होने के फायदे गिनाते हुए कहता है कि सबसे बड़ा फायदा तो यह हुआ कि अब हम"चमार" नहीं रहे ।" 64 नन्द सिंह की इस बात से हमें प्रतीति होती है कि नन्द सिंह को "चमार" शब्द से कितनी नफरत होगी ।

बाला दूबे के उपन्यास "मकान दर मकान" के द्वारका और किशनों भी ईसाई धर्म अंगीकृत कर लेते हैं । ईसाई हो जाने के उपरांत वे अपने अन्य भाई-बांधवों में भी इसका प्रचार करते हैं और इन्हें ईसाई धर्म अंगीकृत करने के लिए प्रेरित करते हैं ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि धर्म परिवर्तन का यह मुद्दा जितना सामाजिक और आर्थिक है इतना ही मनोवैज्ञानिक भी है ।

दलित जाति के लोगों में अपनी जाति को लेकर एक प्रकार की

जातिगत कुंठा पाई जाती है । इस कुंठा के कारण कई बार उनका व्यवहार असाधारण (Abnormal) हो जाता है । जवाहर सिंह के उपन्यास "आदमी और जानवर" का नायक पिछड़ी जाति का है । शैशव काल में अपने गांव के लोगों द्वारा वह कई बार अपमानित भी हुआ होगा, अतः लिख-पढ़ कर कुछ बन जाने के बाद जब वह अपने गांव में वापस आता है तो इस जातिगत कुंठा के कारण उसके व्यवहार में हमें उसके व्यवहार में एक प्रकार की असाधारणता पाई जाती है । उसका गांव स्टेशन से बहुत ज्यादा दूर नहीं था और उसके पास कोई खास वजनीय सामान भी नहीं था फिर भी वह तांगा करके अपने घर जाता है । उसकी इस प्रवृत्ति में गांव के लोगों को दिखा देने की बात मुख्य है । वह गांव के उन लोगों के सामने अपना रूआब गालिब करना चाहता है । जिन लोगों के द्वारा वह कई-कई बार प्रताड़ित हुआ है ।

"धरती धन न अपना" के काली में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है । वह शहर से कुछ रूपये कमाकर आया है । चाहता तो इन रूपयों से और रूपयों को कमाकर वह प्रभुसत्ता (Main power) बन सकता था । परन्तु उसमें जो जातिगत कुंठा है, उसके कारण वह इन रूपयों की ताकत को पचा नहीं पाता । जैसे किसी गरीब भिखारी के पास कभी कुछ पैसे आ जाएं और उसके मन में "यह खाऊं, वह खाऊं" हो जाता है, ठीक उसी प्रकार काली के पास रूपये आ जाने से उसके मन में भी "यह करूं, वो करूं" की भावना पैदा हो जाती है । इस भावना के तहत वह ईंट गारे से बना पक्का मकान बनाने की सोचता है । चमादड़ी में किसी का भी घर पक्का नहीं है । अतः पक्का मकान बनवाकर वह गांव के चौधरियों को दिखा देना चाहता है कि काली की भी कुछ औकात है । परन्तु इस प्रक्रिया में वह अपनी ही जाति-बिरादरी के लोगों का ईर्ष्या भाजन हो जाता है । उसकी ही जाति के कुछ लोग उससे जलने-भुनने लगते हैं । अतः चौधरियों से मिलकर वे उसके घर में चोरी करवा देते हैं । अच्छी खासी रकम मकान बनाने

में खर्च हो जाती है और बाकी रकम चोरी हो जाती है । काली भाई पुनः खेतिहर मजदूर की स्थिति में आ जाते हैं । गुजरात में ऐसा माना जाता है कि यदि किसी पटेल के पास रूपये आते हैं तो वह जमींन खरीदता है । किसी राजपूत के पास पैसे आते हैं तो वह घोड़ी खरीदता है और यदि किसी मियांभाई के पास पैसे आते हैं तो वह दूसरी बीबी लाता है । इस कथन में हमें गहरी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का परिचय मिलता है । काली के स्थान पर यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो ऐसा कदापि न करता । वह उन पैसों से व्यवसाय शुरू करता और , और भी ज्यादा कमाने की चेष्टा करता, कमाकर खर्च करना चाहिए , परन्तु कमाई का दस प्रतिशत या ज्यादा से ज्यादा बीस प्रतिशत ह खर्च ऐसा होना चाहिए जिसमें से हमें दूसरी कमाई न हो । कमाई का अधिक से अधिक उत्पादक कार्यों में होना चाहिए । जिससे कमाई और बढ़े । अनुत्पादक कार्यों में -- मौज-शौक इत्यादि में -- कमाई का अधिकांश खर्च करना यह एक प्रकार की बेवकूफी है और यह बेवकूफी दलित जाति के लोग प्रायः करते हैं, अपनी जातिगत कुंठा के कारण ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दलित जातियों की जो समस्याएं हैं, वे केवल आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक नहीं हैं, बल्कि कुछ मनोवैज्ञानिक भी हैं । उनके आर्थिक अधःपतन के लिए यह कारण भी उत्तरदायी है ।

* दलित-वर्ग की आशा-आकांक्षाएं :--

सहस्त्राधिक वर्षों से दलितों का जो उत्पीडन हो रहा है, उसके कारण उनका जीवन अनेक दुःखों तथा यातनाओं से परिपूर्ण हो गया है । गुलामी और लाचारी की जिंदगी जीते-जीते वे शायद मनुष्य होने का मतलब ही भूल गए हैं । मुर्दा जिंदगी ढोते-ढोते वे खुद मुर्दों के समान हो गए हैं । जीवन का आनंद, उमंग, उल्लास और उसकी चेतना से शायद उनका दूर-दराज

का भी नाता नहीं रह पाया है । किन्तु विगत सौ डेढ़-सौ वर्षों से विविध सुधारवादी आंदोलनों तथा नये मानवतावादी वैश्विक प्रवाहों के कारण कुछ बदलाव आया है । इस वर्ग में पुनः कहीं-कहीं मानवता की चेतना सुग-बुगाने लगी है और उनकी निराश अंधकार पूर्ण जिंदगी में आशा की कोई किरण टिम-टिमाने लगी है । उनकी ये आशा-आकांक्षाएं बहुत ज्यादा नहीं हैं । वे दूसरों का कुछ छीनना भी नहीं चाहते । वे तो बस मानव के रूप में अपनी एक शिनाख्त चाहते हैं । वे बस यही चाहते हैं कि उनको मानव समझा जाय । उनको भी समाज में बैठने-उठने का, अपनी शक्ति और प्रतिभा को प्रदर्शित करने का मानवोचित अधिकार दिया जाय । इस नये युग के उषाकाल में उनकी आंखों में कुछ स्वप्न तैर रहे हैं ।

"जुनिया" उपन्यास का जुनिया और क्या चाहता है ? वह यही तो चाहता है कि समाज में लोग उनको भी मनुष्य समझे । वह भी परमेश्वर का प्राणी है, फिर उसकी छाया से पाप कैसे फैल सकता है ? उसकी सांस से वायु मण्डल कैसे दूषित हो सकता है ? जुनिया कहता है --" हाँ, जुनिया निःसन्देह डूम है । यौवन में उसने खेतों में बीज बोया था । आज वह लोगों के हृदय में प्रभु नाम के बीज बोता है । उसमें जो फल फलता है उससे फिर भूख नहीं लगती ।" 65

"धरती धन न अपना" का काली क्या चाहता है ? उसके सपनों की मियाद कहां तक जाती है ? बस, ईंट-गारे का एक पक्का मकान । यह उसके सपने की सीमा है । शैशव काल से वह इस प्रकार के मकान का स्वप्ना देखता आया है । उसके लिए शहर जाकर वह कुछ रूपये भी कमा लाता है । एक छोटा-सा पक्का ईंटों का मकान हो, घरवाली हो, अपना छोटा-सा संसार हो, इसे कोई बड़ी महत्त्वाकांक्षा तो नहीं कह सकते ? परन्तु उसका यह छोटा-सा सपना भी साकार नहीं हो पाता । रूपये चोरी हो जाते है, या करवा दिये जाते हैं । अपनी ही जाति की ज्ञानों से संकीर्ण रीति-रिवाजों के कारण शादी नहीं कर सकता । ज्ञानों को मरना पड़ता है ।

काली विक्षिप्त-सा होकर भाग जाता है । उसके खाली मकान में मंगू अपनी भैंस बांधता है । इसे स्थिति की बिडम्बना नहीं तो और क्या कह सकते हैं ।

दामोदर सदन द्वारा प्रणीत "नदी के मोड़ पर" उपन्यास में मध्य प्रदेश के भील आदिवासी लोगों के जीवन को चित्रित किया गया है । उपन्यास में अमली नामक एक आदिवासी स्त्री के प्रेम और स्वच्छंद यौन संबंधों को निरूपित किया गया है । अमली मन से तो नरसू से प्यार करती है परन्तु पुत्रवती होने के लिए वह मनकू ओझा की अंकशायिनी बनने में तनिक भी संकोच नहीं करती । यही अमली जब पुलिस के बर्बर बलात्कार का शिकार होती है तो उसका भतीजा रामसिंह उसका बदला लेता है । राम सिंह में हम इस युग की नयी चेतना को देख रहे हैं । वह अपने गांव में सहकारी खेती की स्थापना करता है । बी.डी.ओ. से मिलकर वह ट्रैक्टर लाता है और सभी को साथ मिलाकर खेती करने की प्रेरणा देता है । एक बार ग गांव में भयंकर सूखा पड़ता है, तब रामसिंह गांव की सेवा में दिन-रात एक कर देता है । अपनी अंतिम समय में रामसिंह का स्वास्थ्य गिरने लगता है, तब अमली काकी उसे आराम करने की सलाह देती है । उस समय कहता है-- "सुख की बात करती है काकी । आदिवासी के जीवन में सुख है कहां ?" [66] रामसिंह की इस बात को सुनकर अमली कहती है --"बहुत सुख है रे, ऐसा सुख जो धनी-मानी लोगों के नसीब में नहीं होता । हम लोग खुली हवाओं में रहते हैं । थोड़े से आटे और प्याज के टुकड़ों से खूब मजें से नाचते गाते अपनी जिंदगी गुजार देते हैं ।" [67] हलकैया नामक एक भीलनी जब प्रसव के समय कांपती है, तब अमली कहती है --" दारी इतनी सी हवा से कांप रही है, तू आदिवासी की औलाद नहीं है । जानती है आदिवासी की औरतें कैसी होती है ।...वह किसी भी जंगल, पहाड़ में बच्चा जन देती है, नाल गाड़ देती हैं और मौली इकट्ठा करने में लग जाती हैं ।" [68]

इस प्रकार अनेक प्रकार के संकटों तथा झंझावातों के बीच ये लोग

हिम्मत और साहस के साथ जी रहे हैं, परन्तु हम नागरिक कहे जाने वाले लोगों को इनका इतना सुख भी देखा नहीं जाता । हमीं ही लोग उनकी ~~निर्द्वद~~ निर्द्वन्द्व प्राकृतिक जिंदगी में जहर घोलने का काम करते हैं ।

"एक टुकड़ा इतिहास" में चनुली का पुत्र रतन अपनी मां के अधूरे काम को पूरा करने की इच्छा व्यक्त करता है । वह कहता है --"इजा ! डूम तो आज भी डूम ही रह गये हैं । आज भी वे अछूत हैं । फिर तूने खामख्वाह अपनी जान क्यों दे दी । इजा तू नहीं बदल पाई इन लोगों को । मगर ये बदलेंगे इजा, समय इन्हें बदलने को मजबूर कर देगा । सिर्फ तू नहीं देख पाएगी इजा । तू... ।" 69

यहां रतन के उद्गार में इस वर्ग में जो नई चेतना आने वाली है उसका यत्किंचित संकेत यहां मिलता है ।

मन्नू भंडारी कृत "महाभोज" उपन्यास का बिसू इस नई चेतना का वाहक है । वह एक पढ़ा-लिखा सुशिक्षित युवक है । वह चाहता है कि उसके वर्ग के लोगों में जागृति आवे । वे अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट हों । उसकी मांग यही है कि खेतिहर मजदूरों को सरकार द्वारा निश्चित लघुत्तम वेतनमान मिले । दलित जाति के अधिकारों के लिए वह उनको पढ़ाता है, प्रशिक्षित करता है । परन्तु न्यस्त हितवाले सामंतवादी लोग पहले तो उसे नक्शलवादी कहकर जेल भिजवा देते हैं और बाद में उसकी हत्या कर देते हैं ।

श्री चंद अग्निहोत्री के उपन्यास "नयी बिसात" में मुन्शी भैया का सहयोगी मातादीन अपनी लड़की को पढ़ाता है । वह चाहता है कि लड़की यदि आठ दर्जा पास कर ले तो पढ़लिखकर कहीं स्कूल में मास्टरनी हो सकती है । मातादीन के ये विचार दलित वर्ग में जो नई चेतना आई है उसकी ओर संकेत करते हैं ।

बाला दूबे के उपन्यास "मकान दर मकान" में हरखू धोबी का पुत्र रामरंग पुलिस का डिप्टी हो गया है । इसी उपन्यास में मोतीलाल चमार ज्युडिशियल ऑफीसर हो गए हैं । "नाग वल्लरी" के तिलकराम डी.एम.

हो गये हैं, तो "एक अकेला" की सरबती देवी जिलाधीश बन गई है । ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, परन्तु इस प्रकार के उदाहरणों से दलित वर्ग के लोगों में आशा और आकांक्षाओं की एक किरण जगती है कि यदि उनके बच्चे प्रतिभाशाली होंगे तो इस कलियुग में उनको आगे बढ़ने का मौका मिलेगा ।

स्वतंत्रता के बाद, थोड़ी-सी ही सही परन्तु इस वर्ग में एक नई चेतना आई है । "यथा प्रस्तावित" का बालेसर सरकारी कार्यालयों की लालफीताशाही, भ्रष्टाचार और षडयंत्र को बेनकाब करता है । उस लड़ाई में वह पराजित होता है । पर यहां सवाल हार और जीत का नहीं है । बालेसर यह लड़ाई लड़ता है यही एक महत्वपूर्ण मुद्दा है । "रंगभूमि" के सूरदास की भांति वह भी सच्चा खिलाड़ी है । उसकी आत्मा भी कदाचित सूरदास की भांति यही कहेगी --" हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोए तो नहीं, धांधली तो नहीं की । फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो, हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी अवश्य होगी ।" [70]

डॉ० रामदरश मिश्र के उपन्यास "जल टूटता हुआ" में निम्न पिछड़ी हुई जातियों में इधर जो थोड़ा-बहुत परिवर्तन आया है, उसे रेखांकित किया गया है । जगपतिया चमार में अब महीपसिंह को यह कहने की हिंमत आ गई है कि बबुआ गाली मत दीजिए रमपतिया नौकरी पर गया है, तो क्या हो गया ? नौकरी नहीं करेंगे तो हम लोग खाएंगे क्या ।" [71] यहां गौरतलब बात यह है कि जगपतिया चमार के पहले की पीढ़ी में यह कहने का साहस नहीं था । यह साहस इसलिए आया है कि उसका बेटा रमपतिया अब नौकरी कर रहा है । और एक बंधी हुई रकम उसके घर में आ रही है । जगपतिया का खेत अब महीपसिंह नहीं कटवा सकते हैं क्योंकि जगपतिया अब अकेला नहीं है, उसके साथ अनेक लोग हैं मरने मारने को तैयार ।[72]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दलित जातियों में जो आत्मविश्वास

बढ़ा है, उनमें जो चेतना की एक नई लहर आई है, उसका संकेत "जल टूटता हुआ " की हरिजन कन्या लवंगी के कथन से मिलता है । उसका भाई पारबती नामक एक सवर्ण लड़की से प्रेम करतेश्र हुए पकड़ा जाता है । तब सब लोग मिलकर उनकी खूब पिटाई करते हैं । उस समय लवंगी मानो रणचंडी बनकर प्रकट होती है और उन सबका सामना करते हुए कहती है --" क्या हुआ अगर मेरे भाई ने एक बामन की लड़की से भला-बुरा किया ?... चमार का खून खून नहीं है ? बामन का खून ही खून है ? हमारी कोई इज्जत नहीं होती क्या, बामनों की ही इज्जत होती है ?... जब चमरोटी की तमाम लड़कियों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते हैं तो कोई परलय नहीं आती और कोई चमार बामन की लड़की को छू ले तो परलय आ जाती है ।... हरिजनों के नेता, मैं तुमसे फरियाद करती हूं कि वोट लेने वाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून-खून नहीं है, हमारी इज्जत नहीं है, तो हमारा वोट ही वोट क्यों है ।" 73

लवंगी के उपर्युक्त कथन में "चमार" का खून" , "बामन का खून", हरिजन के नेता", "वोट" आदि जो शब्द आये हैं, वे स्वतंत्रता के बाद की चेतना को रेखांकित करते हैं । यह स्वतंत्रता के बाद की ही कोई हरिजन कन्या ही कह सकती है, उसके पहले की नहीं ।

दलित वर्ग की कमजोरियां :---

दलित वर्ग में नई चेतना जगी है । उसमें कुछ आशा-आकांक्षाएं जगी हैं । अब यह वर्ग भी अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट हुआ है, उनमें कुछ जागृति आई है । यह जागृति शिक्षा के माध्यम से आयी है । यह जागृति नवजागरण की प्रवृत्तियों के कारण आयी है । यह जागृति श राजाराम मोहनराय, केशवचंद्र सेन, ज्योतिबा फूले, डॉ0 आम्बेडकर , महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गांधी जैसे नेताओं के कारण आयी है । डाक्टर बाबा साहेब आम्बेडकर का ॠण दलित जातियों पर हमेशा -

हमेशा के लिए रहेगा । उन्होंने संविधान में दलित जातियों को जो विशेष अधिकार दिलवाये उसका कुछ परिणाम तो समाने जरूर आया है । आरक्षण की नीति से भी, थोड़ा-सा ही सही, परन्तु दलित वर्ग के एक छोटे-से अंश को उसका फायदा हुआ है । परन्तु डॉ0 बाबा साहब आम्बेडकर के स्वप्नों की आपूर्ति के लिए अभी एक बहुत बड़ी एक कठिन मंजिल तय करनी है । यह तभी संभव होगा, जब इस वर्ण में जो कमजोरियां हैं वे दूर होंगी । जब ये लोग अपनी कमजोरियों की ओर ध्यान देंगे और उन कमजोरियों को दूर करने की चेष्टा करेंगे । आरक्षण इसलिए है कि इस वर्ग के साथ अभी तक अन्याय हुआ था । अन्यायी समाज व्यवस्था के कारण इस वर्ग के लोग समाज और प्रशासन के विभिन्न पदों पर पहुंचे नहीं थे । आरक्षण योग्य लोगों को न्याय मिले इसलिए था । आरक्षण एक हथियार था, उसे बैसाखी नहीं मानना चाहिए । आरक्षित वर्ग के लोगों का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है । उनको तो और भी अधिक सुशिक्षित, अधिक जागृत, अधिक ज्ञानसम्पन्न होना होगा । उनका आदर्श "केवट" नहीं "एकलव्य" होना चाहिए । उनका आदर्श स्वयं डॉ0 बाबा साहब आम्बेडकर का होना चाहिए । हमें या इस युग के किसी भी नेता को यह कहने में तनिक भी झिझक हो सकती है कि बाबा साहब आम्बेडकर इस सदी के सर्वाधिक सुशिक्षित एवं सुपाठित व्यक्ति थे । दलित होते हुए भी उन्होंने संस्कृत शास्त्रों का अध्ययन किया था । वेदों और शास्त्रों का अध्ययन किया था । वेदों और शास्त्रों के अध्ययन के द्वारा ही उसकी विसंगतियों को वे संसार के सामने ला पाए थे । कोई व्यक्ति यदि यह कहता है कि मैं कमजोर हूं, क्योंकि मैं "रिजर्व कोटे" से आया हूं तो यह लज्जा की बात होगी, डूब मरने वाली बात होगी ।

दलित वर्ग की सबसे बड़ी कमजोरी है अशिक्षा और अज्ञान । शिक्षा यज्ञ के द्वारा उन्हें अज्ञान के अंधकार को दूर करना होगा । समय अभी और टेढ़ा आने वाला है , सभी शिक्षितों को नौकरी मिलेगी यह जरूरी नहीं है , तथापि उनको अपने अधिकारों के लिए पढ़ना होगा, शिक्षित होना

होगा ।

संगठन में बहुत शक्ति है । दलित वर्गों की सबसे बड़ी कमजोरी उसका असंगठित होना है । इसलिए बाबा साहब कहते थे – शिक्षित बनो संगठित बनो । आलोच्य उपन्यासों में हम देख आये हैं कि दलित जातियाँ भी पूरी तरह से संगठन में नहीं है उनमें भी ऊंच-नीच की भावना है । जब कोई व्यक्ति दूसरे को नींच कहता है, तो जब कोई दूसरा उसको नींच कहता है उसे अन्यायी और अमानुषी कहना मुश्किल हो जाता है । "धरती धन न अपना" तथा "मकान दर मकान" जैसे उपन्यासों में हम यह देखते हैं कि इन दलित जातियों में भी ऊंच-नीच का भेदभाव है । "धरती धन न अपना" उपन्यास में हम देखते हैं कि चमादड़ी में पारस्परिक साहचर्य की भावना बहुत कम है । सुख-दुःख में मदद करने की भावना बिलकुल नहीं है । यहां गरीबी मजबूरी, फटेहाली व्यवस्था, नाते-रिश्तों को तोड़ती है, केवल कुछ रूपये ऐंठने के लिए निक्कू, मंगू के कहने में आकर काली के घर की नींव नहीं खुदने देता और आखिरकार इसी बात को लेकर जो झगड़ा होता है उसमें माथे में चोट खाता है । छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए यहां सब लोग एक दूसरे से झगड़ते हैं, एक-दूसरे की चुंगली करते हैं । ताई निहाली हो या प्रीतो, प्रसन्नी हो या जस्सो सभी मुंह पर कुछ और पीछे कुछ कहते हैं । मकान बनाने की जद्दोजहद में काली की चाची प्रतापी का जब देहांत हो जाता है, उस समय स्वार्थवश सब लोग काली पर प्यार जताते हैं, परन्तु काली का माल-मत्ता हाथ लग जाने पर वे ही लोग काली को बदमाश बताकर उससे दूर भागते हैं । ज्ञानों के प्रेमप्रसंग वाले प्रसंग में गिरे से गिरा हुआ आदमी भी काली को पीटने के लिए तैयार हो जाता है ।

इसी उपन्यास में लेखक ने एक दूसरे महत्त्वपूर्ण आयाम को उदघाटित किया है और वह यह है कि दूसरी जाति के लोग दलितों का शोषण इसलिए कर पाते हैं कि मंगू जैसे कुछ लोग उनमें फूटे हुए हैं और वे प्रतिगामी ताकतों के साथ है । मंगू जैसे लोग चौधरियों का हाथा बनते हैं और इस प्रकार

अपनी ही जाति को हानि पहुंचाते हैं । हरनाम सिंह चौधरी का भतीजा हरदेव चौधरी प्रीतो की लड़की की लाज दिन-दहाड़े लूटता है क्योंकि मंगू इसमें सहयोगी है । बाबा फत्तू मंगू जैसे भ्रष्ट लोगों से बहुत दुःखी है । वह कहता है --"इस मुहल्ले में अब शराफत नहीं रही । यहां अब लुच्चा गुण्डा चौधरी और गुण्डी औरत प्रधान हैं ।" 74 गांव में लच्चो, प्रीतो, पाशो जैसी औरते भी हैं जो कुछ पाने के लिए अपने देह का सौदा करती हैं । चमारिने जाटों द्वारा भोगी जाती हैं । चोरी-चकारी और निन्दा चुगली का बाजार गर्म है । गरीबी और अभाव ने उन्हें घोर स्वार्थी बना दिया है । मानवता नाम की चीज उनमें नहीं रही है। चाची प्रतापी ज्ञानों, और बाबा फत्तू जैसे कुछ पात्रों को छोड़कर दूसरे सब तो पशुतुल्य हो गए हैं । उपन्यास का नायक काली जिस-जिस पर भी विश्वास करता है, वे सब अन्ततः उनको धोखा देते हैं ।

दलित जातियों की एक सबसे बड़ी कमजोरी उनकी गंदगी है । वे गंदी आदतों और व्यसनों के शिकार हैं । ये गंदी आदतें और व्यसन अभाव और दरिद्रता के कारण है । परन्तु जब तक ये जातियां इनसे ऊपर नहीं उठेंगी, तब तक दूसरे लोग उनको घृणा और वितृष्णा की दृष्टि से देखते रहेंगे । "धरती धन न अपना", "जल टूटता हुआ", "सूखता हुआ तालाब", "मैला आंचल" जैसे उपन्यासों में हम देखते हैं कि दलित जाति की स्त्रियां अपने तात्कालिक सुखों के लिए शरीर का सौदा करते हैं । कई बार तो वे इसके कारण इठलाती और इतराती भी हैं । यदि दलित जाति के लोग चाहते हैं कि दूसरे लोग उनको इज्जत की दृष्टि से देखें तो उन्हें इन बातों की ओर ध्यान देना होगा, चाहे जितना परिश्रम करना पड़, चाहे जितनी मेहनत करनी पड़े, पर शरीर का सौदा हम नहीं करेंगे यह प्रण उनको लेना होगा । यह समझ लेना आवश्यक है कि अन्याय और शोषण करने वाला जितना गुनहगार है, उतना ही गुनहगार वह व्यक्ति भी है, जो इसका विरोध नहीं करता ।

ऊपर जिस गंदगी की बात की गई है, वह आन्तरिक या आत्मिक

प्रकार की गंदगी है । परन्तु बाह्य या बाहरी प्रकार की गंदगी भी अधिकांशतः दलित जाति के लोगों में पाई जाती है , इसे एक बिडम्बना ही कहना चाहिए कि जो लोग दूसरों के यहां साफ-सफाई करते हैं , वे स्वयं इतने गंदे क्यों रहते हैं । "नाच्यो बहुत गोपाल" उपन्यास में मोहना की माई अपने घर की ही मोरी पर संडाश करने बैठ जाती है । और ऐसा एक दिन नहीं वह कई-कई दिन तक करती है । इसे देखकर किसी भी व्यक्ति को जुगुप्सा हो सकती है । वह मर्दों की भांति चिलम और हुक्का भी पीती है ।

"नाग वल्लरी" उपन्यास में डोम लोगों के घरों से उठने वाली एक विशेष दुर्गन्ध का लेखक ने उल्लेख किया है । इस दुर्गंध के कारण बहुत से लोग "डुमियोल" से घिनाते हैं । कृष्णा मास्टर बहुत साफ-सुथरे तरीके से रहते हैं । अतः ठकुराइन गायत्री देवी कृष्णा मास्टर के यहां तो बिना संकोच के रहती हैं, परन्तु दूसरे डोम लोगों के यहां उसे खाने-पीने में संकोच होता है । गंदगी का एक कारण गरीबी भी है, परन्तु फिर भी व्यक्ति यदि थोड़ा ध्यान उस पर दे तो गरीबी में भी स्वच्छतापूर्वक रह सकता है । वस्तुतः यह गंदगी एक संस्कारगत बाबत है । इन लोगों में बीडी, तमाकू, चिलम आदि का व्यसन भी होता है और इसके कारण वे जहां-तहां थूकते भी रहते हैं । दूसरे प्रायः दलित और निम्न जातियों में यह पाया जाता है कि पानी पीने के मटके से ही लोग सीधे पानी लेते हैं । लोटा या प्याला जूंठा हो तो भी सीधे उससे पानी लिया जाता है । यदि दलित जाति के लोग यह चाहते हों कि दूसरे लोग उनके यहां का पानी पीवें तो उनको भी सफाई का थोड़ा ध्यान तो रखना चाहिए ।

अछूतों के सबसे ज्यादा खिलाफ जाने वाली बात यह है कि वे मुर्दा ढोरों का मांस खाते हैं । प्रेमचन्द के उपन्यास "कर्मभूमि" में इस आयाम को भी आंकलित किया गया है । उपन्यास का नायक अमर उनकी यह आदत छुडाने की चेष्टा करता है । इस काम में अमर को सबसे ज्यादा सहयोग मुन्नी से मिलता है । मुन्नी ठकुरानी है । परन्तु कुछ गोरे सिपाहियों ने

उस पर बलात्कार किया था । इस बलात्कार के बाद वह खुद को अछूत समझती है । उसने तो आत्महत्या का प्रयास भी किया था , परन्तु गुदड का बड़ा लड़का सुमेर उसे बचाकर अपने गांव में ले आता है । तब से वह चमारों के बीच में रहती है । यों तो वह चमारों के बीच में चमार बनकर ही रहती है, लेकिन उसके सवर्ण संस्कार उस मुर्दा गोमांस खाने से रोंकते हैं । अमरकान्त जब इस कुरीति का विरोध करता है तो यही मुन्नी उसका हौंसला बढ़ाती है और वक्त आने पर मुन्नी अपने प्राणों की बाजी लगाकर इस गंदी प्रथा का अन्त करा देती है । उपन्यास में मुन्नी और प्रयाग इस संदर्भ में जो बात-चीत करते हैं उससे मुन्नी और मुन्नी के जरिये प्रेमचन्द का नजरिया स्पष्ट हो जाता है : " मुन्नी झुंझलाकर बोली -- जो चीज किसी और उंची जातवाले नहीं खाते, उसे हम क्यों खाएं, इससे तो लोग नीच समझते हैं । प्रयाग ने आवेश में कहा-- तो हम कौन किसी बाम्हन-ठाकुर के घर बेटी ब्याहने जाते हैं । बाम्हनों की तरह किसी के द्वार पर भीख मांगने तो नहीं जाते ? यह तो अपना-अपना रिवाज है । मुन्नी ने डांट बतायी-- यह कोई अच्छी बात है कि सब लोग हमें नींच समझें, जीभ के सवाद के लिए ।"[75]

जब वाद-विवाद से काम नहीं चलता तो मुन्नी गाय के पास बैठकर सबको ललकारती है कि अब जिसे गडासा चलाना हो, चलाये मैं यहां बैठी हूं । मामले को बढ़ते देखकर चौधरी फैसला पंचायत पर छोड़ देता है । --" भाइयों यहां गांव से सब आदमी जमा है । बताओं अब क्या सलाह है ?"[76]

अन्त में भूरे नामक युवक पंचायत के फैसले को निम्नलिखित शब्दों में सुनाता है : " मरी गाय के मांस में ऐसा कौन-सा मजा रखा है, जिसके लिए सब जने मरे जा रहे हो ? गड्ढा खोदकर मांस गाड़ दो, खाल निकाल लो ।... सारी दुनिया हमें इसीलिए तो अछूत समझती है, कि हमें दारू शराब पीते हैं, मुरदा मांस खाते हैं और चमड़े का काम करते हैं । और हममें क्या बुराई है ? दारू, शराब हमने छोड़ ही दी । हमने क्या छोड़

दी, समय ने छुड़वा दी— फिर मुरदा मांस में क्या रखा है ? रहा चमड़े का काम, उसे कोई बुरा नहीं कह सकता, और अगर कोई कहे भी तो हमें उसकी परवाह नहीं । चमड़ा बनाना-बेचना बुरा काम नहीं... कई महीने गुजर गये । गांव में फिर मुरदा-मांस न आया । आश्चर्य की तो बात यह थी कि दूसरे गांवों के चमारों ने भी मुरदा-मांस खाना छोड़ दिया । शुभ उद्योग कुछ संक्रामक होता है । " 77

इसी उपन्यास में अमरकान्त के कहने पर रोज का पियक्कड़ (Drunkard) ऐसा गुदड़ चौधरी शराब पीना छोड़ देता है । इस संदर्भ में मुन्नी और चौधरी के बीच का निम्नलिखित संवाद गौरतलब है : "मुन्नी सशंक होकर बोली आज तुम्हारा जी अच्छा नहीं है क्या दादा ? " चौधरी ने हंस कर कहा -" जी क्यों नहीं अच्छा है ? मंगाई तो थी पीने ही के लिए , पर अब जी नहीं चाहता । अमर भैया की बात आज मेरे मन में बैठ गई । कहते हैं —" जहां सौ में अस्सी आदमी भूखों मरते हों, वहां दारू पीना गरीबों का रक्त पीने के बरोबर है ।" मुन्नी चिंतित हो गई-- "तुम उनके कहने में न आओ । अब छोड़ना तुम्हें अवगुण करेगा । कहीं देह में दरद होने लगे । " चौधरी ने इन विचारों को जैसे तुच्छ समझ कर कहा - "चाहे दरद हो, चाहे बाई, अब पीऊंगा नहीं । जिंदगी में हजारों रूपये की दारू पी गया । सारी कमाई नसे में उड़ा दी । उतने रूपये से कोई उपकार का काम करता, तो गांव का भला होता और जस भी मिलता । मूरख को इसलिए बुरा कहा है ।" 78

अच्छे-बुरे लोग हर वर्ग और वर्ण में होते हैं । परन्तु कोई दलित वर्ग का व्यक्ति बुराइयों की सीमाओं को लांघता है तो उससे पूरा दलित वर्ग बदनाम होता है । आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा प्रणीत "बबुला के पंख" उपन्यास का चरित्र नायक जुगनू जाति से भंगी है । इस उपन्यास में भंगी को नायक बनाकर लेखक ने कथानक को नवीनता अवश्य दी है । परन्तु जुगनू वस्तुतः नायक नहीं खलनायक सिद्ध होता है । वस्तुतः जुगनू एक भ्रष्ट राजनेता का प्रतीक है । वह एक अमरबेल

की तरह है । जो जिसका सहारा लेती है उसे ही नष्ट कर देती है । सर्व-प्रथम जुगनू अपने मित्र शोभाराम को नष्ट कर देता है । अपने मित्र शोभाराम को मरवा डालता है, जिसके सहारे वह मिनिस्टर के पद तक पहुँचा था । शोभाराम की मृत्यु के पश्चात, वह उसकी पत्नी पद्मा को अपनी वासना का शिकार बनाता है । पद्मा के बाद गोमती नामक एक महिला का वह बलात्कार करता है । इस बलात्कार के कारण गोमती आत्महत्या कर लेती है । मिनिस्टर बनने के पश्चात, वह सारदा नामक एक संभ्रान्त महिला से विवाह करना चाहता है, किन्तु विवाह के पूर्व कन्या पक्ष को उसकी जाति का परिचय मिल जाता है । अतः विवाह संपन्न नहीं होता । जुगनू विवाह मण्डप से भाग खड़ा होता है । इस प्रकार यहां जुगनू का व्यवहार दलित जातियों के लिए कलंक रूप ठहरता है । "मकान दर मकान" उपन्यास का ज्यूडिशियल अफसर मोतीलाल चमार होते हुए भी अपने आप को गडरिया बताता है ।

दलितों पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि रिजर्व कोटा का लाभ लेते हुए जब वे किसी ऊँचे पद पर पहुंच जाते हैं, तो अपनी जाति की सेवा करने के बदले वे स्वयं को उस जाति से अलग करने की चेष्टा करते हैं । इतना ही नहीं वे भी अन्य सवर्णों की तरह अपनी जाति के लोगों से घृणा करते हैं और उनको धुत्कारते हैं । "नाग वल्लरी" तथा "अभिशाप" आ-दि उपन्यासों में हम इस प्रवृत्ति को रेखांकित कर चुके हैं । वस्तुतः दलित लोगों का आदर्श जुगनू, पद्नाभन, तिलकराम जैसे लोग नहीं अपितु कृष्णा मास्टर, काली, बिसू, बाबा फत्तू जैसे लोग हैं, जो दलितों की नरक-तुल्य जिंदगी को संवारने का सपना रखते हैं ।

निष्कर्ष :---

अध्याय का समग्रावलोकन करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक असंदिग्धतया पहुंच सकते हैं ---

§1§ प्रस्तुत अध्याय में धर्म, नीति , संस्कार, शिक्षा तथा मनोविज्ञान प्रवृत्ति क्षेत्र की समस्याओं को व्याख्यायित किया गया है । ये समस्याएं परस्पर अनुस्यूत हैं ।

§2§ इन समस्याओं के अतिरिक्त उनकी आशा-आकांक्षाओं तथा कमजोरियों को भी विश्लेषित किया गया है ।

§3§ धर्म के छद्म रूप के कारण अस्पृश्यता, मंदिर-प्रवेश, धर्म की राज-नीति जैसी समस्याएं सामने आती हैं ।

§4§ धर्मान्तरण के मूल में दलितों का अत्यधिक उत्पीड़न ही उत्तर-दायी है, जिसे हम "जुनिया" , "सीधी सच्ची बातें", "मकान दर मकान" तथा "धरती धन न अपना" जैसे उपन्यासों में रेखांकित कर सकते हैं ।

§5§ नीति विषयक समस्याओं में ऊंची जातियों का दलित जातियों के प्रति जो दृष्टिकोण है, वह भ्रांत है । और इस भ्रांत दृष्टिकोण के कारण बहुत-सी समस्याएं पैदा होती हैं । दलित जातियों का नीति-विषयक दृष्टिकोण भी अनेक भ्रांत धारणाओं से ग्रस्त है ।

§6§ दलितों के जीवन की कतिपय समस्याएं उनके पीढ़ीगत संस्कारों के कारण है । "नाच्यो बहुत गोपाल", "कब तक पुकारूं ?" , "धरती धन न अपना", जैसे उपन्यासों में हम उनकी इन संस्कारगत समस्याओं को विश्लेषित कर सकते हैं ।

§7§ शैक्षिक समस्याओं के अन्तर्गत जो समस्याएं आती हैं , उनके दो कारण हैं -- शिक्षा का अभाव और गलत शिक्षा का अनुशरण ।

§8§ दलितों की बहुत-सी समस्याओं का उत्स उनकी लघुताग्रंथि में ढूंढा जा सकता है ।

§9§ स्वाधीनता के बाद इस वर्ग में कुछ चेतना आई है, इस तथ्य को

नकारा नहीं जा सकता ।

§10§ दलित वर्ग के लोगों में दरिद्रता, प्रमाद तथा पीढ़ीगत संस्कारों के कारण कुछ बुरी और गंदी आदतें पायी जाती हैं । इन आदतों और कमजोरियों के प्रति इस वर्ग को जागरूक और सचेष्ट होना चाहिए ।

सन्दर्भ-सूची :---

1- भारतीय सामाजिक समस्याएं : डॉ० एम.एल.गुप्ता : 239

2- उद्धरण कोश : डॉ० भोलानाथ तिवारी : पृ. 272

3- ----- वही ---- पृ. 272

4- ----- वही ---- पृ. 272

5- ----- वही ---- पृ. 272

6- ----- वही ---- पृ. 274

7- ----- वही ---- पृ. 274

8- -----वही ---- पृ. 275

9- Thus Spoke Shri Ramkrishna : P : 97.

10- Thus Spoke Vivekanand : P : 24

11- मधुशाला : हरिवंशराय बच्चन : आज के लोकप्रिय कवि बच्चन : सं. सत्यकाम विद्यालंकार - पृ. 6

12- हिन्दी गजल उद्भव और विकास : डॉ० रोहिताश्व अस्थाना : पृ. 111

13- समकालीन हिन्दी गजल : सं० जयसिंह व्यथित : पृ. 94

14- मानस माला : डॉ० पारूकान्त देसाई : पृ. 35

15- ऋग्वेद : 10-90-12

16- द्रष्टव्य : Indian Social problems : Dr. M.L.Gupta : 279

17- भारत का सांस्कृतिक इतिहास : हरिदत्त वेदालंकार : पृ. 275

18- ------ वही ---- पृ. 277

19- दृष्टव्य : शेखर एक जीवनी : अज्ञेय : पृ. 208

20- ------- वही ------ पृ. 215

21- सूखता हुआ तालाब : डॉ0 रामदरश मिश्र : पृ. 19

22- गोदान : प्रेमचन्द : पृ. 209

23- कर्मभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 212-213

24- जुनिया : गोविंद वल्लभ पंत : पृ. 15

25- ------- वही ------ पृ. 25

26- दृष्टव्य : नदी का शोर : डॉ0 आरिग पुडि : पृ. 126

27- मंगलोदय : ~~ब्रज~~ ब्रजभूषण : पृ. 21

28- ------- वही ------ पृ. 41

29- ------- वही ------ पृ. 44

30- ------- वही ------ पृ. 45

31- दृष्टव्य : चिन्तनिका : डॉ0 पारुकान्त देसाई : पृ. 103 - 104

32- दृष्टव्य : प्रेमचंद और अछूत समस्या : डॉ0 कान्ति मोहन : पृ. 57

33- दृष्टव्य : धरती धन न अपना : जगदीश चंद्र : पृ. 131

34- जुनिया : गोविंद वल्लभ पंत : पृ. 98

35- ------- वही ------ पृ. 106

36- दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास : डॉ0 सुरेश सिन्हा : पृ. 332-333

37- दृष्टव्य : सीधी सच्ची बातें : भगवती चरण वर्मा : पृ. 433

38- ---------- वही ------ पृ. 451

39- ---------- वही ------ पृ. 451

40- मकान दर मकान : बाला दूबे - पृ. 124

41- यथा प्रस्थावित : गिरिराज किशोर : पृ. 37

42- मकान दर मकान : बाला दूबे : पृ. 132

43- एक अकेला : राम कुमार भ्रमर : पृ. 23

44- एक टुकड़ा इतिहास : गोपाल उपाध्याय : पृ. 85-86

45- नयी बिसात : श्रीचंद अग्निहोत्री : 41

46- ------- वही ---- पृ. 41

47- ------- वही ---- पृ. 41

48- धरती धन न अपना : जगदीश चन्द्र : पृ. 109

49- नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृतलाल नागर : पृ. 80

50- दृष्टव्य : ---- वही ---- पृ. 99

51- ---------------वही ---- पृ. 99

52- एक टुकड़ा इतिहास : गोपाल उपाध्याय : पृ. 85-86

53- जल टूटता हुआ : डॉ0 रामदरश मिश्र : पृ. 225

54- सूखे सेमल के वृन्तों पर : डॉ0 पारूकान्त देसाई : पृ. 84

55- मानस माला : डॉ0 पारूकान्त देसाई : पृ. 27

56- दृष्टव्य : संदेश : गुजराती दैनिक समाचार पत्र : दि0 8-4-2000 पृ. 8

57- यह किस्सा मुझे निर्देशक महोदय ने बताया था ।

58- दृष्टव्य : रागदरबारी : श्रीलाल शुक्ल : पृ. 187

59- दृष्टव्य : नागवल्लरी : शैलेश मटियानी : पृ. 182

60- दृष्टव्य : नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृत लाल नागर : पृ. 99

61- सीधी सच्ची बातें : भगवती चरण वर्मा : पृ. 451

62- जुनिया : गोविंद वल्लभ पंत : पृ. 104

63- धरती धन न अपना : जगदीश चन्द्र : पृ. 163

64- ------ वही ---- पृ. 131

65- जुनिया : गोविंद वल्लभ पंत : पृ. 106

66- नदी के मोड़ पर : दामोदर सदन : पृ. 126

67- ------ वही ---- पृ. 126

68- ------ वही ---- पृ. 192

69- एक टुकड़ा इतिहास : गोपाल उपाध्याय : पृ. 274

70- रंगभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 558
71- जल टूटता हुआ : डॉ० रामदरश मिश्र : पृ. 43
72- द्रष्टव्य : ------ वही ----- पृ. 389
73- द्रष्टव्य : ------ वही ----- पृ. 353-354
74- धरती धन न अपना : जगदीश चन्द्र : पृ. 99
75- कर्मभूमि - प्रेमचन्द : पृ. 169
76- -------- वही ----पृ. 169
77- -------- वही --- पृ. 171-173
78- -------- वही --- पृ. 155

* * *